229 1170

अनेकान्त

फाल्गुन, संवत् २००४ :: मार्च, सन् १९४८

वर्ष ९ ★ किरण ३

संस्थापक-प्रवर्तक
वीरसेवामन्दिर, सरसावा

सञ्चालक-व्यवस्थापक
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

★

सम्पादक-मंडल

जुगलकिशोर मुख्तार
प्रधान सम्पादक

मुनि कान्तिसागर

दरबारीलाल न्यायाचार्य

अयोध्याप्रसाद गोयलीय
डालमियानगर (विहार)

★

लेखोंपर पारितोषिक

'अनेकान्त'के इस पूरे वर्षमें प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ लेखोंपर डेढ़सौ १५०), सौ १००) और पचास ५०) का पारितोषिक दिया जाएगा। इस पारितोषिक-स्पर्धामें सम्पादक, व्यवस्थापक और प्रकाशक नहीं रहेंगे। बाहरके विद्वानोंके लेखोंपर ही यह पारितोषिक दिया जाएगा। लेखोंकी जांच और तत्सम्बन्धी पारितोषिकका निर्णय 'अनेकान्त'का सम्पादक-मण्डल करेगा।

व्यवस्थापक 'अनेकान्त'

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ

	विषय	पृष्ठ
१.	होली होली है ! (कविता)—['युगवीर'	८९
२.	समन्तभद्र-भारतीके कुछ नमूने (युक्त्यनुशासन)—[सम्पादक	९०
३.	गाँधीजीका पुण्य-स्तम्भ—[श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल	९१
४.	रत्नकरण्डके कर्तृत्व-विषयमें मेरा विचार और निर्णय—[सम्पादक	९७
५.	पं० गोपालदासजी वरैया—[अयोध्याप्रसाद गोयलीय	१०५
६.	यशोधरचरित्र-सम्बन्धी जैन-साहित्य—[श्रीअगरचन्द नाहटा	१०८
७	शङ्का-समाधान—[दरबारीलाल कोठिया	११३
८.	भिक्षुक-मनोवृत्ति—[अयोध्याप्रसाद गोयलीय	११५
९.	सम्पादकीय—[अयोध्याप्रसाद गोयलीय	११९
१०.	निरीक्षण और सम्मति—[पं० कैलाशचन्द्र जैन शास्त्री	१२३
११.	साहित्य-परिचय और समालोचन—[दरबारीलाल कोठिया	१२४

विद्वत्परिषद्का चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन

श्री भा० दि० जैन विद्वत्परिषदका चतुर्थ वार्षिक अधिवेशन पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय न्यायाचार्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णीकी, जिन्होंने अब क्षुल्लकके महनीय पदकी दीक्षा ले ली है, अध्यक्षतामें ता० २४, २५ मार्च सन् १९४८को बरुआसागर (झाँसी)में अपूर्व समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशनमें भाग लेनेके लिये इन्दौर, बनारस, बड़ौत, सूरत, जबलपुर, सागर, बीनाललितपुर,पपौरा, मथुरा, देहली, मेरठ, सहारनपुर, देहरादून, सरसावा आदि देशके विविध भागोंसे विद्वान् और धार्मिक-जन पधारे थे। क्षुल्लकजी महाराजके संघमें अनेक त्यागी, ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी, क्षुल्लक आदि व्रतीजन पहलेसे ही मौजूद थे और जिनका भी एक महत्वका व्रती सम्मेलन हुआ। अष्टाह्निका पर्वका समय होनेके कारण बहुत धार्मिक आनन्द रहा। अनेक लोगोंने व्रतादि ग्रहण किये। वात्सल्य-मूर्ति बाबू रामस्वरूपजी बरुआसागरकी ओरसे सिद्धचक्र विधान हुआ और अन्य समस्त आयोजन भी इन्हींके द्वारा हुए। विद्वानोंके महत्वपूर्ण मार्मिक भाषण हुए। इस अधिवेशनमें विद्वत्परिषद्ने नये अनेक प्रस्ताव पास न कर पुराने प्रस्तावोंको ही तत्परताके साथ अमलमें लानेके लिये दोहराया। महात्मा गाँधीकी मृत्युके शोक-प्रस्तावके अतिरिक्त एक महत्वका नया प्रस्ताव यह किया गया है कि जैनसमाजसे अनुरोध किया जाय कि वह अपने योग्य विद्यार्थियोंको अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, आदिकी उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके लिये विदेशोंमें भेजनेके वास्ते एक वृहत् छात्रवृत्ति फण्ड कायम करें। इसी फण्डसे विदेशोंमें जैन-संस्कृति और अहिंसा-प्रधान जैनधर्मका प्रचार करनेके लिये योग्य विद्वान् भेजे, जो एक वर्ष तक विद्वत्परिषद्के नियन्त्रणमें रहकर उच्चतम धार्मिक शिक्षा और आचरणका अभ्यास करें।

अधिवेशनमें और भी अनेक समस्याओंपर गहरा विचार हुआ। वर्णीजी (अब क्षुल्लकजी) की अध्यक्षतासे विद्वत्सम्मेलनको एक सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि विद्वानोंमें उच्च चारित्रकी भावना दृढमूल होती जारही है और उसमें पर्याप्त वृद्धिकी आशा है। शङ्का-समाधान विभाग पूर्ववत् कायम रहा। उसमें बाबू रतनचन्दजी रि० मुख्तार सहारनपुरका नाम और शामिल किया गया है। इस तरह यह अधिवेशन विचार-लाभ, धर्मलाभ, सज्जन-समागम आदि कई दृष्टियोंसे महत्वपूर्ण रहा। और सभीने वर्णीजीकी अमृतवाणीका अपूर्व लाभ लिया।

दरबारीलाल कोठिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ॐ अर्हम्

वार्षिक मूल्य ४)

एक किरणका मूल्य ।)

वर्ष ९ किरण ३	वीरसेवामन्दिर (समन्तभद्राश्रम), सरसावा, ज़िला सहारनपुर फाल्गुण, वीरनिर्वाण संवत २४७३, विक्रम संवत् २००४	मार्च १९४८

होली होली है !!

(१)

ज्ञान-गुलाल पास नहिं, श्रद्धा—
समता रङ्ग न रोली है ।
नहीं प्रेम-पिचकारी करमें ,
केशर-शान्ति न घोली है ॥
स्याद्वादी सुमृदङ्ग बजे नहिं ,
नहीं मधुर-रस-बोली है ।
कैसे पागल बने हो चेतन !
कहते 'होली होली है' !!

(२)

ध्यान-अग्नि प्रज्वलित हुई नहिं ,
कर्मेन्धन न जलाया है ।
असद्भावका धुआँ उड़ा नहिं ,
सिद्ध-स्वरूप न पाया है ॥
भीगी नहीं जरा भी देखो—
स्वानुभूतिकी चोली है ।
पाप-धूलि नहिं उड़ी, कहो फिर—
कैसे 'होली होली है' !!*

रचयिता— 'युगवीर'

* श्रीसम्मेदशिखरकी बीसपन्थी कोठीके जैनमन्दिरकी एक दीवारको इस रचनासे अलंकृत किया गया है—सुन्दर पेंटिंग-द्वारा मोटे अक्षरोंमें इसे उसपर लिखा गया है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समन्तभद्र-भारतीके कुछ नमूने
युक्त्यनुशासन

प्रवृत्ति-रक्तैः शम-तुष्टि-रिक्तै रुपेत्य हिंसाऽभ्युदयाङ्ग-निष्ठा ।
प्रवृत्तितः शान्तिरपि प्ररूढं तमः परेषां तव सुप्रभातम् ॥३८॥

'जो लोग शम और तुष्टिसे रिक्त हैं—क्रोधादिककी शान्ति और सन्तोष जिनके पास नहीं फटकते—,(और इस लिये) प्रवृत्ति-रक्त हैं—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रहमें कोई प्रकारका नियम अथवा मर्यादा न रखकर उनमें प्रकर्षरूपसे प्रवृत्त हैं—आसक्त हैं—उन (यज्ञवादी मीमांसकों) के द्वारा, प्रवृत्तिको स्वयं अपनाकर, 'हिंसा अभ्युदय (स्वर्गादिकप्राप्ति) के हेतुकी आधारभूत है' ऐसी जो मान्यता प्रचलित की गई है वह उनका बहुत बड़ा अन्धकार है—अज्ञानभाव है। इसी तरह (वेदविहित पशुवधादिरूप) प्रवृत्तिसे शान्ति होती है ऐसी जो मान्यता है वह भी (स्याद्वादमतसे बाह्य) दूसरोंका घोर अन्धकार है—क्योंकि प्रवृत्ति रागादिकके उद्रेकरूप अशान्तिकी जननी है न कि अरागादिरूप शान्तिकी। (अतः हे वीरजिन !) आपका मत ही (सकल अज्ञान-अन्धकारको दूर करनेमें समर्थ होनेसे) सुप्रभातरूप है, ऐसा सिद्ध होता है।'

शीर्षोपहारादिभिरात्मदुःखैर्देवान्किलाऽऽराध्य सुखाभिगृद्धाः ।
सिद्ध्यन्ति दोषाऽपचयाऽनपेक्षा युक्तं च तेषां त्वमृषिर्न येषाम् ॥३९॥

'जीवात्माके लिये दुःखके निमित्तभूत जो शीर्षोपहारादिक हैं—अपने तथा बकरे आदिके सिरकी बलि चढ़ाना, गुग्गुल धारण करना, मकरको भोजन कराना, पर्वतपरसे गिरना जैसे कृत्य हैं—उनके द्वारा (यक्ष-महेश्वरादि) देवोंकी आराधना करके ठीक वे ही लोग सिद्ध होते हैं—अपनेको सिद्ध समझते तथा घोषित करते हैं—जो दोषोंके अपचय (विनाश) की अपेक्षा नहीं रखते—सिद्ध होनेके लिये राग-द्वेषादि विकारोंको दूर करनेकी जिन्हें पर्वाह नहीं है—और सुखाभिगृद्ध हैं—काम सुखादिके लोलुपी हैं !! और यह (सिद्धि-मान्यतारूप प्ररूढ अन्धकार) उन्हींके युक्त है जिनके हे वीरजिन ! आप ऋषि-गुरु नहीं हैं !!—अर्थात् इस प्रकारकी घोर अज्ञानताको लिये अन्धेरगर्दी उन्हीं मिथ्यादृष्टियोंके यहाँ चलती है जो आप जैसे वीतदोष-सर्वज्ञ-स्वामीके उपासक नहीं हैं। (फलतः) जो शुद्धि और शक्तिकी पराकाष्ठाको पहुँचे हुए आप जैसे देवके उपासक हैं—आपको अपना गुरु-नेता मानते हैं—(और इसलिये) जो हिंसादिकसे विरक्तचित्त हैं, दया-दम-त्याग-समाधिकी तत्परताको लिये हुए आपके अद्वितीय शासन (मत) को प्राप्त हैं और नय-प्रमाण-द्वारा विनिश्चित परमार्थकी एवं यथावस्थित जीवादि तत्त्वार्थोंकी प्रतिपत्तिमें कुशलमन हैं, उन सम्यग्दृष्टियोंके इस प्रकारकी मिथ्या-मान्यतारूप अन्धेरगर्दी (प्ररूढतमता) नहीं बनती; क्योंकि प्रमादसे अथवा अशक्तिके कारण कहीं हिंसादिकका आचरण करते हुए भी उसमें उनके मिथ्या-अभिनिवेशरूप पाशके लिये अवकाश नहीं होता—वे उससे अपनी सिद्धि अथवा आत्मभलाईका होना नहीं मानते।'

[यहाँ तकके इस युक्त्यनुशासन स्तोत्रमें शुद्धि और शक्तिकी पराकाष्ठाको प्राप्त हुए वीरजिनेन्द्रके अनेकान्तात्मक स्याद्वादमत (शासन) को पूर्णतः निर्दोष और अद्वितीय निश्चित किया गया है और उससे बाह्य जो सर्वथा एकान्तके आग्रहको लिये मिथ्यामतोंका समूह है उस सबका संक्षेपसे निराकरण किया गया है, यह बात सद्बुद्धिशालियोंको भले प्रकार समझ लेनी चाहिये।]

स्तोत्रे युक्त्यनुशासने जिनपतेर्वीरस्य निःशेषतः, संप्राप्तस्य विशुद्धि-शक्तिपदवीं-काष्ठां परामाश्रिताम् ।
निर्णीतं मतमद्वितीयममलं संक्षेपतोऽपाकृतं, तद्बाह्यं वितथं मतञ्च सकलं सद्धीधनैर्बुध्यताम् ॥ —विद्यानन्दः

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

गाँधीजीका पुण्य-स्तम्भ

[श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल]

[इस लेखके ले० डा० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल एक बहुत बड़े प्राच्य-विद्या-विशारद विद्वान् है। मथुरा और लखनऊके म्यूजियमोंमें क्यूरेटर (Curator) के प्रतिष्ठित पदपर रह चुके हैं और आजकल न्यू देहलीमें सरकारी पुरातत्त्व-विभागके एक बहुत ऊँचे पदपर आसीन हैं। बड़े ही उदार-हृदय एवं सज्जन-स्वभावके महानुभाव हैं। आपने गाँधीजीके पुण्य-स्तम्भके सुझावको लेकर यह जो लेख लिखा वह बड़ा ही महत्वपूर्ण है। इससे विजय-कीर्तिस्तम्भादि विविध स्तम्भोंके प्राचीन इतिहासपर भारी प्रकाश पड़ता है। सहृदय पाठक इसपरसे स्तम्भोंकी दृष्टि और उनके महत्वका कितना ही बोध प्राप्त कर सकते हैं। यह लेख प्रथमतः २२ फरवरी सन् १९४८ के दैनिक हिन्दुस्तानमें प्रकट हुआ है और वहींसे यहाँपर उद्धृत किया जाता है। लेखक महोदयने हिन्दुस्तानमें मुद्रित लेखको पुनः पढ़कर उसकी अशुद्धियोंको सुधार देनेके साथ लेख-सम्बन्धी स्तम्भ-चित्रोंके ब्लॉक भी हिन्दुस्तान ऑफिससे दिला देनेकी कृपा की है। इस अनुग्रहके लिये हम आपके बहुत आभारी हैं। साथ ही हिन्दुस्तानके सहायक सम्पादकजीका भी आभार मानते हैं, जिनके सौजन्यसे चित्रोंके ब्लॉक शीघ्र प्राप्त हो सके हैं। —सम्पादक]

"जहाँ वे बैठे वह मन्दिर होगया और जहाँ उन्होंने पैर रखा वह पवित्र भूमि बन गई।"

नेहरूजीके ये शब्द गाँधीजीके प्रति राष्ट्रके मनमें भरी हुई देश-व्यापी भावनाको प्रकट करते हैं। वह एक ज्योति थे। ज्योतिका मन्दिर उनका शरीर, प्रकाश-स्तम्भकी तरह जहाँ-जहाँ गया उसने वहाँ-वहाँ युग-युगसे फैले हुए अन्धकार और मूर्छाको हटाकर चैतन्यका आलोक फैला दिया। निखिल भुवनमें भरी हुई दिव्य ज्योति उनके द्वारा जिस-जिस स्थानपर विशेषरूपसे प्रकट होती रही वह सब सचमुच पवित्र हैं—न केवल वर्तमान युगके लिये अपितु आने वाली पीढ़ियोंके लिये भी। कोटानुकोटि जन इस महापुरुषकी वन्दनाके लिये आते हुए उन-उन स्थानोंमें अपनी श्रद्धाञ्जलि चढ़ायेंगे और हृदय एवं बुद्धिकी कृतज्ञतासे पूर्ण प्रणाम-भाव अर्पित करेंगे।

महान् पुरुष अमर विचारोंके प्रतीक होते हैं। उनके लिये जो स्मारक हम रचते हैं वे उन विचारोंके प्रति हमारे सम्मानके प्रतीक बन जाते हैं। विचार और कर्म इन्हीं दोनोंका समुदित नाम जीवन है। सुन्दर और लोकोपयोगी जीवन-तत्त्वको किसी एक व्यक्तिने इतनी अधिक मात्रामें इतने थोड़े समयमें और इतने बहुसंख्यक व्यक्तियोंके लिये सुलभ और प्रत्यक्ष सिद्ध बनाया हो, इसका उदाहरण भारतके इतिहासमें दूसरा नहीं। हमारे इतिहासका लम्बा भूत-काल अपने समस्त तेज और हितकारी अंशको लेकर गाँधीजीकी आत्मामें प्रविष्ट होगया और उनके शब्दोंमें और कर्मोंके द्वारा फूट निकला। वे कर्म और वे शब्द राष्ट्रके भावी जीवनमें सच्चे स्मारककी भाँति स्थायी रहेंगे। भौतिक स्मारक भी इन्हींको चिरजीवन प्रदान करनेके साधनमात्र बन सकते हैं।

वेदोंके हिरण्यस्तूप

वेदोंके समयसे इस प्रकारके स्मारकोंकी कल्पना की जासकती है, जब दिव्य विचार और दिव्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्मोंको पृथ्वीके साथ सम्बन्धित करके किसी स्तूप या स्तम्भके रूपमें स्थायित्व प्रदान किया गया। वेदोंके हिरण्य-स्तूप एक ऋषिके संज्ञक हैं। 'सुनहली ज्योतिका स्तूप' यह नाम अवश्य ही सत्यके उस सुनहले स्वरूपसे लिया गया है जो इस विश्वमें सृष्टिके आदिसे ही स्थापित है। भौतिक पक्षमें रात्रिके तम और आवरणको हटाकर सूर्यका बड़ा सुनहला स्तूप नित्यप्रति हमारे सामने बनता है। सूर्यके रूपमें मानो हम नित्यप्रति उस सत्य और ज्योति तत्वका एक बड़ा स्मारक देखते हैं, जिसकी किरणें सारे संसारमें फैल जाती हैं। अन्धकारपर ज्योतिकी, विजय—यह इस नाटकीय स्मारकका स्वरूप है'।

ब्रह्मकी स्तम्भ-रूपसे कल्पना

किन्तु इससे भी महत्वपूर्ण एक दूसरी कल्पना है जिसमें ब्रह्मको ही स्तम्भ या खम्भा कहा गया है। ईश्वरीय शक्तिका यह स्तम्भ सारे ब्रह्माण्डकी विधृति है अर्थात उसके धारण करने वाली नींव, उसके संस्थान या ढाँचेको खड़ा रखने वाली दृढ़ टेक और उसकी रक्षक छत है। बिना ईश्वरीय खम्भेके एक क्षण को भी इस जगतकी स्थिति सम्भव नहीं। यही गांधीजीकी विलक्षण राम-निष्ठा थी। उनका यह ध्रुव विश्वास कि बिना रामकी इच्छाके कुछ नहीं मिलता उसी पुराने सत्यका नई भाषामें उलथा था। सत्य, धर्म, अमृत, जीवन और प्राण नाना प्रकारके निर्माणकारी तत्व उसी एक मूल ईश्वरीय खम्भेके अनेक रूप हैं जिनसे हमारा समाज टिका हुआ है। इस प्रकारके महापुरुषरूपी खम्भे जो राष्ट्र और समाज की टेक बनते हैं उसी एक मूल ब्रह्म-स्तम्भके रूपान्तर या टुकड़े कहे जा सकते हैं। गांधीजी सचमुच इस एक प्रकारके महान स्तम्भ थे। राष्ट्रकी मानस-भूमिपर इस उन्नत स्तम्भकी सत्ता बहुत काल तक अडिग रहेगी।

वैदिक यज्ञोंके यूप

वैदिक यज्ञोंके रूपमें जो व्यक्तिगत और सामाजिक रीतिसे उदात्त और लोकोपकारी कार्य किये जाते थे उन समारोहोंके स्मारक भी बनाये जाते थे। वस्तुतः यह स्मारक वही खम्भे थे जिन्हें यज्ञकी वेदीके बीचमें खड़ा किया जाता था और उनके लिए पुराना पारिभाषिक नाम यूप था। वैदिक यज्ञ-सिद्धांत के अनुसार बिना यूपकी स्थितिके कोई यज्ञ नहीं किया जा सकता। यज्ञीय कर्म करनेके लिये यूपकी पूर्वस्थिति आवश्यक है। इस सत्यात्मक नियमको हम अपने ही हालके इतिहासमें चरितार्थ देखते हैं। भारतवर्षमें जो राष्ट्रीय यज्ञ किया गया जिसके चारों ओर देशके लाखों-करोड़ों आदमी एकत्र होगये उस विराट यज्ञके यूप-स्तम्भ गांधीजी थे। ऋग्वेदकी एक कल्पना है कि जब देवताओंने पुरुषका सुधार करनेके लिये पुरुषमेध यज्ञ करना चाहा तो उस पुरुषको पशु बनाकर उन्होंने उस यज्ञके खम्भेके साथ बाँध लिया। इसका तात्पर्य यही है कि मनुष्यमें जितना भी पाशविक अंश है उसको हटानेके लिये सर्वप्रथम यज्ञके खम्भेके साथ बाँधकर उसीकी भेंट चढ़ाई गई। राष्ट्रीय यज्ञमें भी इसीको दोहराया गया और गांधीरूपी यूपसे बांधकर राष्ट्रका जो जड़ता और पशुता का अंश था वह धीरे-धीरे मिटाया गया और संस्कृत बनाया गया। सौभाग्यसे कर्मकाण्डीय यज्ञोंके स्मारक रूप बनाये जाने वाले यज्ञीय स्तम्भ या यूपोंके कई अच्छे उदाहरण भारतीय-कलामें प्राप्त हुए हैं। इनमें दूसरी शताब्दीका मथुराका यज्ञीय स्तम्भ कलाकी दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। इसका निचला भाग चौकोर और ऊपरका अठकोण है एवं चोटीपर एक सुन्दर माला पहनाई गई है। चौकोर भागके एक ओर सुन्दर ब्राह्मी लिपि और संस्कृत भाषामें एक लेख उत्कीर्ण है जो ई० दूसरी शताब्दीमें राजा वसिष्कके राज्य-कालका है। यह खम्भा यमुनाके किनारे बालूमें गडा हुआ मिला था जहाँ किसी समय वह यज्ञ किया गया होगा।

महाभारतकी इन्द्रयष्टि

महाभारतके पुराने इतिहासमें राजा उपरिचार वसुकी एक कहानी दी हुई है, जिसमें यह कल्पना की गई है कि समृद्धिशाली राष्ट्रका हँसता-खेलता हुआ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो स्वरूप है वह एक खम्भा है जिसका सार्वजनिक पूजन अनेक प्रकारसे राष्ट्रकी जनता करती है। इस खम्भेका नाम वहाँपर इन्द्रयष्टि कहा गया है, और इसीके साथकी मालाका नाम वैजयन्ती बताया गया है, जो राष्ट्रीय-विजय-सूचक है। कहा जाता है कि राजा वसुने तपश्चर्या की जिससे इन्द्रको डर लगा कि कहीं यह स्वर्ग तो नहीं चाहता। तब इन्द्रने उसके तपसे प्रसन्न होकर कहा कि तुम पृथ्वीपर रहते हो और मैं स्वर्गमें, मैं तुम्हें पृथ्वीपर ही अपना प्रिय मित्र बनाता हूं, तुम ऐसा देश बसाओ जहाँके निवासी धर्मशील और सदा संतुष्ट हों, जो हँसीमें भी झूठ न बोलें, जहाँ मनुष्य तो क्या पशुओंपर भी अत्याचार न हों, जहाँ सब अपने-अपने कर्तव्य या सधर्मको पूरा करें, जहाँ भूमि अच्छी हो और सब तरहका धनधान्य पूर्ण हो। ऐसे सब प्रकारसे रमणीय और ऐश्वर्ययुक्त देशमें तुम राजा बनो। इस प्रकारके सर्व-सुखी राष्ट्रकी सूचक यह इन्द्रयष्टि मैं तुमको देता हूँ। देशका जो मग्नानन्दी रूप है, उसकी प्रतीक यह इन्द्रयष्टि है। यष्टिको ही प्राकृतमें लाठी और हिन्दीमें उसीको लाठ या लाट कहते हैं। इस प्रकारकी यष्टि या स्तम्भके अनेक उदाहरण प्राचीन भारतीय सिक्कों पर और प्राचीन भारतीयकलामें पाये जाते हैं, जिसमें एक ऊँचे खम्भेपर फहराते हुए दोहरे झण्डेकी आकृति बनी हुई होती है।

सम्राट अशोकके धर्मस्तम्भ

भारतीय इतिहासमें स्तम्भ और स्मारकोंकी सर्वोत्तम देन मौर्य सम्राट महाराज अशोकसे हमें प्राप्त होती है। अशोकने बुद्धके लगाये हुए छोटेसे पौधेको राष्ट्रकी शक्तिसे सींचकर संसारव्यापी बना दिया। उनका मन बुद्धके गुणोंका ध्यान करके व्यक्तिगत श्रद्धासे भर गया। उन्होंने बुद्धके जन्मस्थानकी यात्रा की और नेपालकी तराईमें बुद्धके जन्मस्थान लुम्बिनी गाँवमें एक स्तम्भ बनवाया जिसपर लिखा है, "यहाँ भगवानका जन्म हुआ था। यह गाँव राज-करसे मुक्त किया जाता है।" पाटलीपुत्रसे लुम्बिनीकी यात्राका मार्ग तय करते हुए संभवतः धर्म-यात्रीके पड़ावके सूचक और भी स्तम्भ बनवाये गये। अशोकका नाम न केवल भारतवर्ष बल्कि एशियाके इतिहासमें सबसे महत्वपूर्ण है। उसने सबसे पहले एशियाकी एकताका स्वप्न देखा और अपनी निर्मल दृष्टि और दृढ़ निश्चयसे प्रेम और अहिंसाके द्वारा मनुष्यका मनुष्यके साथ सम्बन्ध स्थापित करनेका जो नया प्रयोग उसने चलाया उसमें सम्मिलित होनेके लिये अपने पड़ौसी देशके राजाओंको भी निमंत्रण दिया। देहरादून जिलेमें कालसी नामक स्थानकी चट्टानपर खुदे हुए लेखमें उसने सीरिया, मिस्र और यूनानके उन राजाओंका नाम दिया है जिनके पास उसने अपने दूत भेजे थे ताकि वे उन्हें भी धर्म-विजयका संदेश सुनाएँ। अपने पुत्र महेन्द्र और अपनी पुत्री संघमित्राको सिंहलमें धर्म-प्रचारके लिए भेजकर उसने इतिहासमें एक अद्भुत उदाहरण रखा। अशोकके मनकी यही प्रेरणात्मक शक्ति थी जो उसके अनेक देवोत्तर कार्योंके द्वारा प्रकट होती है। बर्मा, नैपाल आदि भारतके पड़ौसी देश भी अशोककी धर्म-विजयसे लाभ उठानेमें समर्थ हुए। सम्राटको जितनी स्वदेशकी चिन्ता थी सम्भवतः दूसरे देशोंकी उससे कम न थी। स्वदेश और विश्वका यह विलक्षण समन्वय अशोकके जीवनमें जैसा था वैसा ही गांधीजीके जीवनमें भी प्रकट होता है। अशोकके धर्मका मूलमन्त्र समवाय या पारस्परिक मेलमिलापपर आश्रित था। 'समवाय एव साधु' इस अपने एक वाक्यमें मानो सम्राटने भारत-राष्ट्रकी सदा-सदाकी विशेषता और जीवनकी आवश्यकताका निचोड़ बता दिया है। अशोकका साम्राज्य अफगानिस्तानसे मैसूर तक फैला हुआ था। उसने सारे राष्ट्र में चट्टानों और खम्भोंपर अभिलेख खुदवाये जिनमें बार-बार सीधे-सादे शब्दोंमें सचाईके उन नियमोंको बताया गया है जिनसे व्यक्ति, समाज और देशका जीवन उदात्त बनाया जा सकता है। अपने विचारोंके अनुसार राष्ट्रका निर्माण करते हुए उसने दीन, दरिद्र, दुखी, स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी सबके उद्धार और उन्नतिका ध्यान रखा है। इन लेखोंको लिखवाते समय अशोक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के सामने ईरानी सम्राट महान दारा प्रथमका उदाहरण था जिसने तीन-तीन भाषाओंमें बड़े-बड़े लेख बिहिस्तूनं (प्राचीन भगस्थान अर्थात् देवताओंका स्थान) और सूसा (संस्कृत शूषा) आदि स्थानोंमें अपनी दिग्विजयका डङ्का पीटनेके लिये लिखवाये। वे लेख आज भी अस्तित्वमें हैं और दाराकी हिंसा और मारकाटसे भरे हुए दिग्विजयके चित्रको हमारे सामने लाते हैं। पर अशोककी विजय दूसरे प्रकारकी थी और उसके शब्दोंमें हम एशियाकी आश्वस्त आत्माकी पुकार सुन सकते हैं। अशोकका आदर्श भविष्यके लिये है। दाराका यज्ञ परिमित किन्तु अशोकका अपरिमित है। अशोक सच्चे अर्थोंमें भारतीय संस्कृतिका पुत्र था।

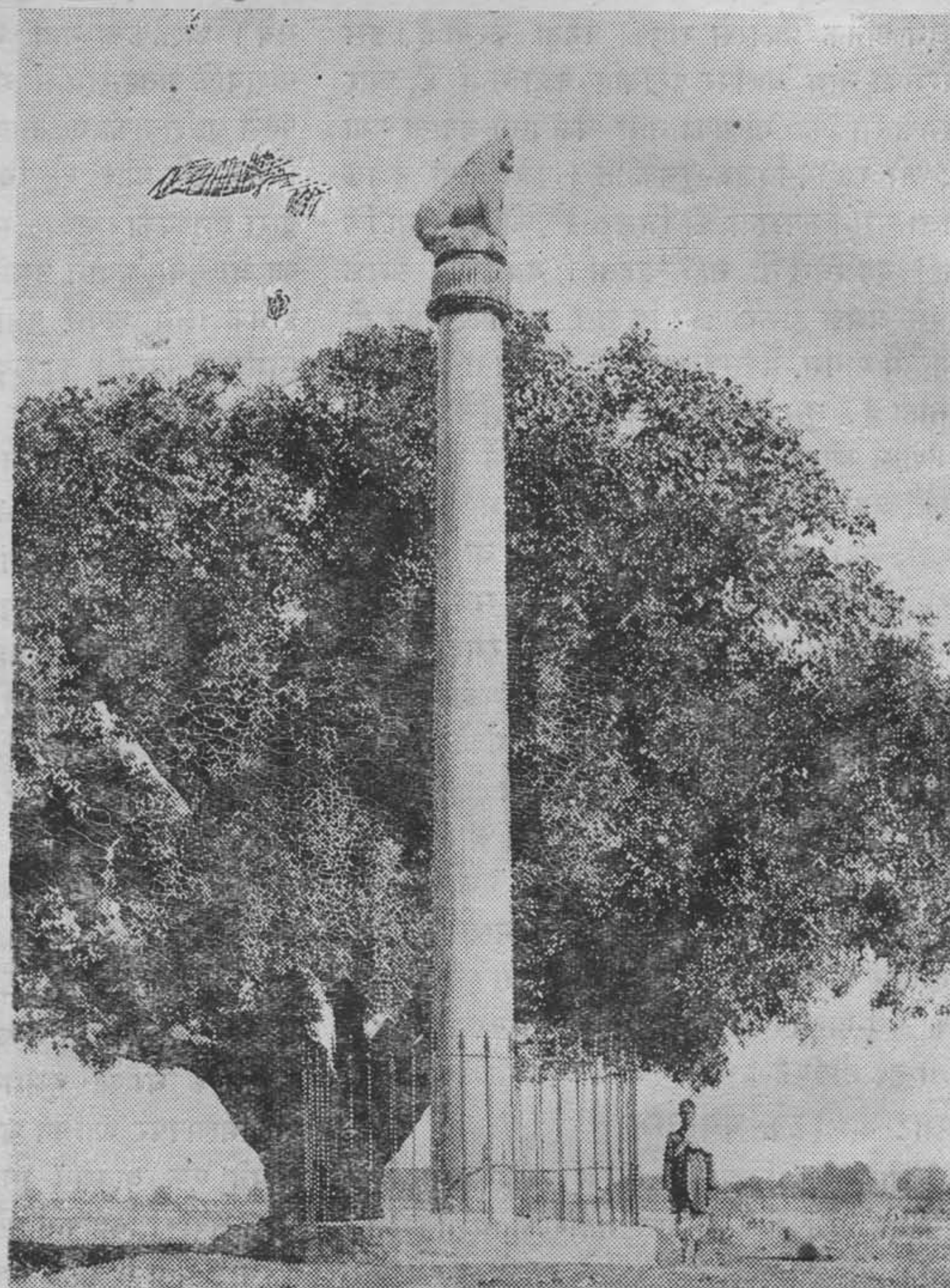

अशोक-स्तम्भ जो नन्दगढ़में बना हुआ है।

अशोक-स्तम्भोंकी विशेषता

भाषा, लिपि और विषयकी दृष्टिसे भी अशोकके शिलालेख और स्तम्भलेख हमारे लिये शिक्षाप्रद हैं। उसने जनताकी बोलचालकी भाषाको अपनाया। उसने अपने एक लेखमें कहा कि मैं ठेठ देहातके मनुष्योंके (जानपदस जनस) दर्शन करना चाहता हूँ, उनका कुशल-प्रश्न पूछना चाहता हूँ और उन तक अपने धार्मिक उपदेशोंकी आवाज पहुँचाना चाहता हूँ। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, यह रीति-रिवाजोंका पचड़ा नहीं था बल्कि जीवनको ऊँचा उठानेके लिये आत्मासे निकली हुई एक सीधी पुकार थी जो सबकी समझमें आने योग्य थी। अशोकके लेखोंकी दूसरी विशेषता उनकी ब्राह्मी लिपि है। उसके अक्षर सुन्दर हैं और वह उस समयकी राष्ट्रीय लिपि थी। हमारी वर्तमान देवनागरी लिपि उसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अशोक-कालीन ब्राह्मी लिपिका ही विकसित रूप है।

लगभग २२०० वर्षोंसे अशोकके स्तम्भ देशके विभिन्न भागोंमें खड़े हुए उसके यशको उजागर बनाते रहे हैं। अशोकके साढ़े छः सौ वर्ष बाद आने वाले चीनी यात्री फाहियानने छः खम्भोंका उल्लेख किया है, लेकिन सातवीं शताब्दीमें हर्षके समयमें आने वाले चीनी धर्म-यात्री य्वान च्वाङ्गने अशोकके पन्द्रह खम्भोंका आँखो देखा वर्णन लिखा है, जिनमें से कई अब नष्ट होचुके हैं। अब तक अशोशके शैल-स्तम्भ निम्नलिखित स्थानोंमें मिल चुके हैं:—

(१) टोपरा, जिला अम्बाला। (२) मेरठ। (३) इलाहाबाद। (४) कौशाम्बी। (५) लौरिया-अरराज। (६) लौरिया-नन्दनगढ़ (सिंह-शीर्षक-युक्त)। (७) रामपुरवा। (८) साँची। (९) सारनाथ। (१०) संकिसा। (११) रुम्मिनिदेई (बुद्धका जन्मस्थान)। (१२) निगलीव।

हो सकता है इनमेंसे कुछ खम्भे अशोकसे पहलेके भी रहे हों, क्योंकि अपने लेखमें उसने एक जगह ऐसा सङ्केत किया है— 'जहाँ शिला यन्त्र या फलक हों वहाँ यह धर्मलिपि लिखवा दी जाय, जिससे यह चिरस्थायी हो।"

भौगोलिक बँटवारेकी दृष्टिसे भी अशोकके लेख विचारणीय हैं। उनमेंसे कुछ तो बुद्धके पवित्र स्थानोंको सूचित करते हैं, जैसे रुम्मिनिदेईका स्थान, और कुछ उस समयकी बड़ी राजधानियोंको जैसे साँची, सारनाथ और कौशाम्बी आदि। उसके फैले हुए लेखोंसे उसके राज्य और विस्तारकी सीमा मिलती है। संभव है ये सभी दृष्टिकोण सम्राट्के मनमें रहे हों।

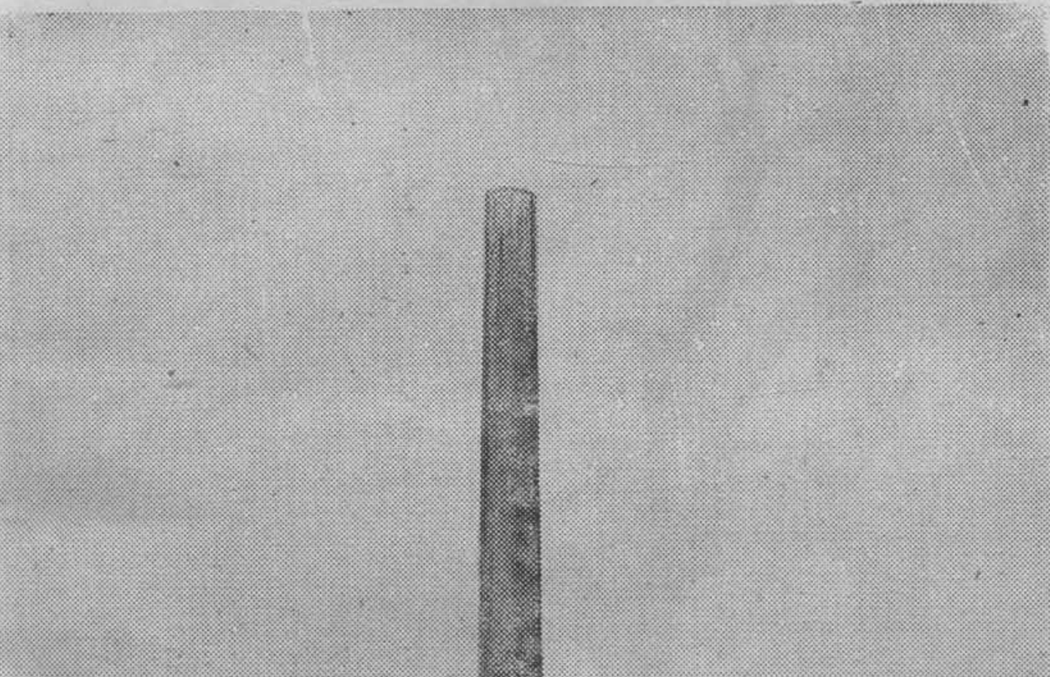

प्रयाग-स्थित अशोक-स्तम्भ

अशोक-स्तम्भोंकी कला

कलाकी दृष्टिसे अशोकके खम्भे भारतीय कलाका एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विलक्षण चमत्कार कहे जासकते हैं। पत्थरके खम्भोंपर जो दमक है वह शीशेको भी मात करती है। सत्रहवीं शताब्दीमें टौमकोरियेट नामक यात्रीने दिल्लीके खम्भेको तांबेका बना हुआ समझ लिया था। प्रसिद्ध इतिहास-लेखक श्री विन्सेएट स्मिथने लिखा है—"पत्थरका काम करने वालोंकी निपुणता इन खम्भोंके निर्माणमें अपनी पूर्ण पराकाष्ठाको पहुँच गई थी और उन्होंने वह चमत्कार कर दिखाया जो शायद बीसवीं सदी-की शक्तिसे भी बाहर है। तीस-चालीस फुट लम्बे कड़े पत्थरके खम्भोंपर बहुत ही बारीकीका काम हुआ है और ऐसा ओप लगाया गया है जो अब किसी कारीगरकी शक्ति-से बाहर है।" सारनाथ-का सिंह-शीर्षक स्तम्भ इस कलाकी पराकाष्ठा-को सूचित करता है। ह्वानच्वाङ्गने भी लिखा है कि यह खम्भा उस जगह लगाया गया था जहाँ बुद्धने पहली बार अपने धर्मका उपदेश दिया। यह खम्भा सत्तर फुट ऊँचा था और इसकी दमक यशबकी जैसी थी। अन्तिम बात आज भी ज्यों-की-त्यों सच्ची है। सर जान मार्शलने इस भारतीय कलाकी प्रशंसा-में लिखा है—"शैली और कारीगरी दोनों दृष्टियोंसे यह सर्वोत्कृष्ट है। इसकी नक्काशी भारतीय शिल्पमें अद्वितीय है और मेरे विचारमें प्राचीन संसारमें कोई चीज इस क्षेत्रमें इससे बढ़कर नहीं बनी।" सारनाथका सिंहस्तम्भ और उसपर बना हुआ चक्र अब हमारी राष्ट्रीय मुद्रा और चक्रध्वज नामक

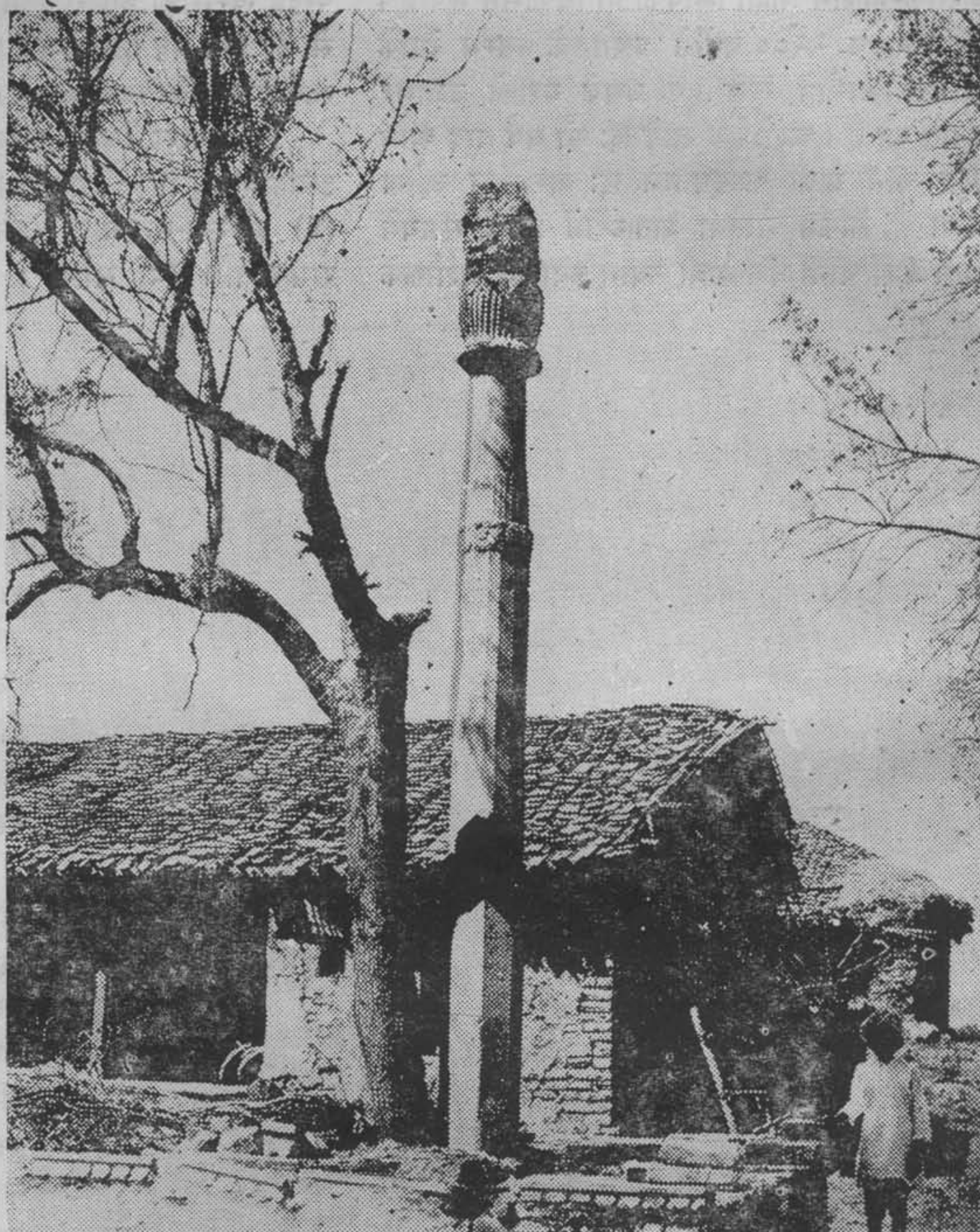

अशोक-कालीन एक और स्तम्भ जो हैलीडोरोस नामक स्थानपर स्थित है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राष्ट्रीय झण्डेके साथ सम्बन्धित होगए हैं। इसके द्वारा नवीन भारतने एक प्रकारसे अपने आपको अशोककी आत्माके साथ मिला दिया है।

इन खम्भोंके बनाने और कई सौ मील दूर लेजानेका कार्य भी एक बड़ी कठिन समस्या रही होगी। ये सब चुनारके गुलाबी पत्थरके बने हुए हैं। पचास-साठ फुट लम्बे पत्थरोंके बड़े टुकड़ोंको काटकर उन्हें तराशना, डौलियाना और मांठना बहुत ही कठिन कार्य रहा होगा। उस समयके इञ्जीनियर कितने परिश्रमसे चुनार या पाटलीपुत्रकी केन्द्रीय शिल्पशालासे सुदूर स्थानों तक इन्हें लेगये इसका कुछ अनुमान हम सुलतान फिरोजशाह तुग़लकके वर्णनसे लगा सकते हैं। उसने दिल्लीकी अपनी राजधानीको सजानेके लिए अम्बाला जिलेके टोपरा गाँवसे अशोकका खम्भा उखाड़कर यहाँ खड़ा किया। उसके लिये बयालीस पहियोंकी एक गाड़ी बनाई गई, एक पहियेमें बँधे हुए रस्सेको दोसौ आदमी खींचते थे और खम्भेके सहित सारी गाड़ीके बोझको ८४०० आदमी खींच रहे थे। खम्भेको नीचे लानेके लिये एक रूईका पहाड़ बनाया गया और धीरे-धीरे नीचा करके गाड़ीके बराबर लाकर खम्भेको उसपर लादा गया। वहाँसे जब उसे जमुनाके किनारे लाये तो कई बड़ी नावोंपर उसे लादा गया और फिर दिल्लीमें उसका स्वागत किया गया। वहाँसे फिर वह खम्भा फिरोजशाहके कोटले तक लाकर एक ऊँचे ठिकानेपर खड़ा किया गया। ऐसा करनेके लिए उस समयके बन्धानियोंने देशी ढङ्गसे तैयार होनेवाले रस्से बाँस-बल्लियोंका ठाठ और बालाकुप्पीका प्रयोग किया। इसका वर्णन करने वाली तत्कालीन पुस्तक प्राप्त हुई है जो पुरातत्व विभागसे सानुवाद प्रकाशित हो चुकी है।

समुद्रगुप्तका स्तम्भ

अशोकके खम्भोंको बादमें भी लोगोंने खूब पसन्द किया होगा। इसका एक उदाहरण यह है कि गुप्त-वंशके प्रतापी महाराज समुद्रगुप्तने अपनी दिग्विजयका लेख लिखवानेके लिये अशोकके खम्भे को ही चुना। उसमें कहा गया है 'कि मानो पृथ्वीने खम्भेके रूपमें आकाशकी ओर अपना ही एक हाथ ऊँचा उठा दिया'।

एक यूनानी राजदूतका गरुडध्वज

बाहरसे आने वाले विदेशियोंने भी खम्भोंकी परम्पराको अपनाया। पहली शताब्दी ईसवी पूर्व हिलियोडोरस नामका एक यूनानी राजदूत मध्यभारत के राजाके पास आया था। यहाँ वह भागवत धर्ममें दीक्षित होगया और उसने विष्णुका बहुत सुन्दर गरुडध्वज-स्तम्भ भेलसामें स्थापित किया। यह स्तम्भ नीचे अठकोना ऊपर सोलहकोना और फिर अन्तमें गोल होगया है। इसका मस्तक पद्माकृति है। खम्भेके निचले भागके एक पहलूपर लेख उत्कीर्ण है जिसमें सत्य, दम और दान रूपी धर्मकी प्रशंसा की गई है।

महरौलीका लोह-स्तम्भ

प्राचीन कीर्ति-स्तम्भोंमें एक बहुत अच्छा उदाहरण महरौलीका लोह-स्तम्भ है। इसका लोहा १५०० वर्षोंसे धूप और मेंहका सामना करते हुए भी जङ्गसे बिल्कुल अछूता रहा। इसे स्मिथने 'धातु-निर्माणकी कलाका करिश्मा' कहा है। आज भी संसारमें ऐसे कारखानोंकी संख्या थोड़ी ही है जो इतना बड़ा लोहेका लट्ठा ढाल सकें। इस स्तम्भपर खुदा हुआ संस्कृतका लेख चन्द्र नामक राजाका है, जिसने ४०० ई० के लगभग गङ्गासे बल्ख तकके समस्त देशको एकताके सूत्रमें बाँध दिया था। सम्भवतः यह सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य थे, जिनका नाम भारतीय साहित्यके क्षेत्रमें अमर है।

गुप्तकालीन विजय-स्तम्भ

गुप्तकालमें पत्थरके बने विजयस्तम्भकी परम्परा और भी फैली। गाज़ीपुरके भीतरी गाँवमें स्कन्दगुप्त-का एक खम्भा मिला है जिसके लेखमें लिखा है कि उन्होंने अपने भुज-दण्डोंकी शक्तिसे युद्धभूमिमें हूणों-से लोहा लेकर इस पृथ्वीको कम्पायमान कर दिया। गुप्त-कालके बाद भारत में अनेक प्रकारके स्तम्भ बनाये जाने लगे। विशेषकर गुफाओं और मन्दिरोंके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिए बहुत प्रकारके स्तम्भोंका उपयोग होने लगा। अजन्ताकी गुफाओंमें या एलोराके कैलाश मन्दिरमें अथवा चिदम्बरमके सहस्र खम्भों वाले मण्डपमें हम अनेक प्रकारकी कारीगरीसे सुसज्जित अच्छेसे अच्छे खम्भे पाते हैं। इनकी विविधता और संख्याको देखकर कहा जा सकता है कि भारतवर्ष कलाके क्षेत्रमें स्तम्भोंका देश रहा है।

स्तम्भोंकी निर्माण-कला

कलाकी दृष्टिसे सुन्दर स्तम्भके तीन भाग होने चाहिएँ—अधिष्ठान या नीचेका भाग, दण्ड या बीचका भाग और शीर्ष या ऊपरका भाग, इन तीनोंके भी और कितने ही अलङ्करण कहे गये हैं। मध्यकालमें प्रायः प्रत्येक बड़े मन्दिरके सामने एक स्वतन्त्र स्तम्भ या मान स्तम्भ बनानेकी प्रथा चल पड़ी थी। किन्तु प्राचीन विजय-स्तभोंकी परंपरामें कीर्ति-स्तम्भ भी बनने लगे थे जो पत्थरकी ऊँची मीनार कहे जा सकते हैं। चित्तौड़में राणा कुम्भाका कीर्ति-स्तम्भ इसी प्रकारकी वस्तु है और कलाकी दृष्टिसे बहुत ही आकर्षक है।

गांधीजीका पुण्य-स्तम्भ

बुद्धके उपदेशोंको उनके शिष्योंने पीछे उनका धर्म-शरीर समझा था। गांधीजीने भी जो कुछ कहा वह उनके विचारोंका प्रत्यक्ष प्रतिनिधि होनेके कारण उनका विचार-शरीर कहा जा सकता है। इसकी रक्षा और चिर-स्थितिका प्रयत्न हमारा राष्ट्रीय

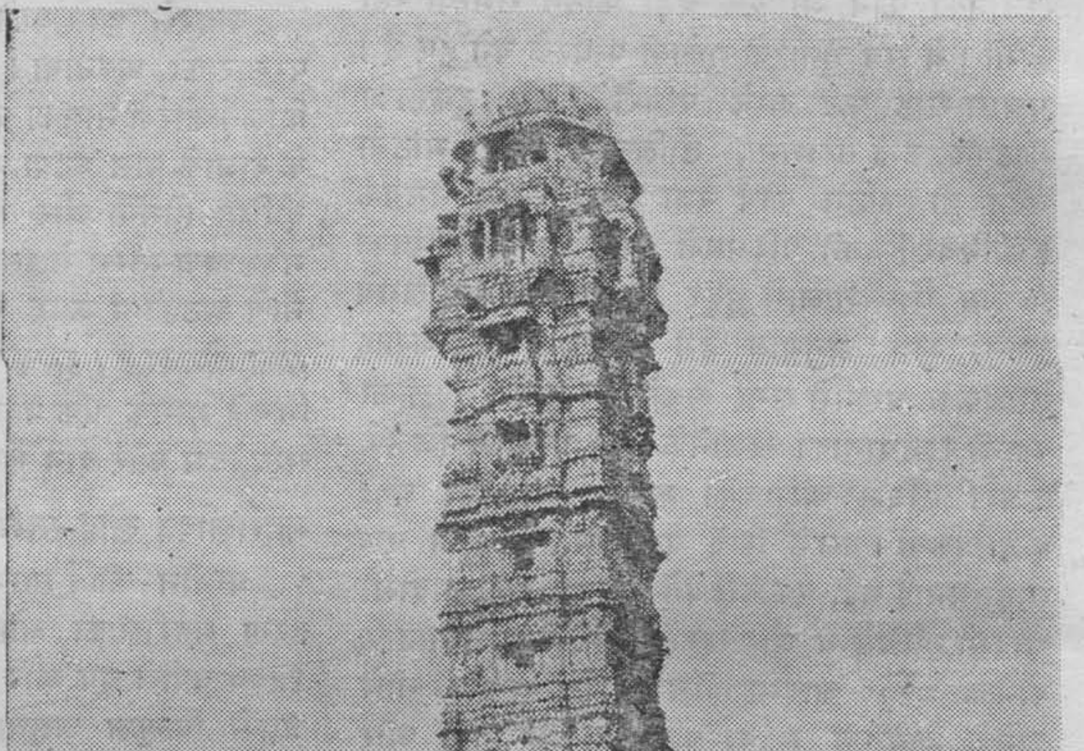

चित्तौड़का सुप्रसिद्ध विजय-स्तम्भ
इसे राणा कुम्भाने अपनी विजयके स्मारकमें बनवाया था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्तव्य है। जिस प्रकार प्रियदर्शी अशोकने जनताकी भाषामें जनताके बोधके लिए अपने विचारोंको लेखोंके द्वारा चिरस्थायी बनाया और यह प्रयत्न किया कि छोटे-बड़े सब तक वे विचार पहुँचाए जा सकें उसी प्रकारका प्रयत्न अपने अर्वाचीन राष्ट्र-पिताके लिए भी करने योग्य है। आज प्रचारके अन्य अनेक साधन सुलभ होगये हैं फिर भी शिल्पकलाके द्वारा महापुरुषोंकी वाणीको अङ्कित करनेका प्रयत्न अवश्य ही आगे आने वाले युगोंके लिए अभिनन्दनीय रहेगा।

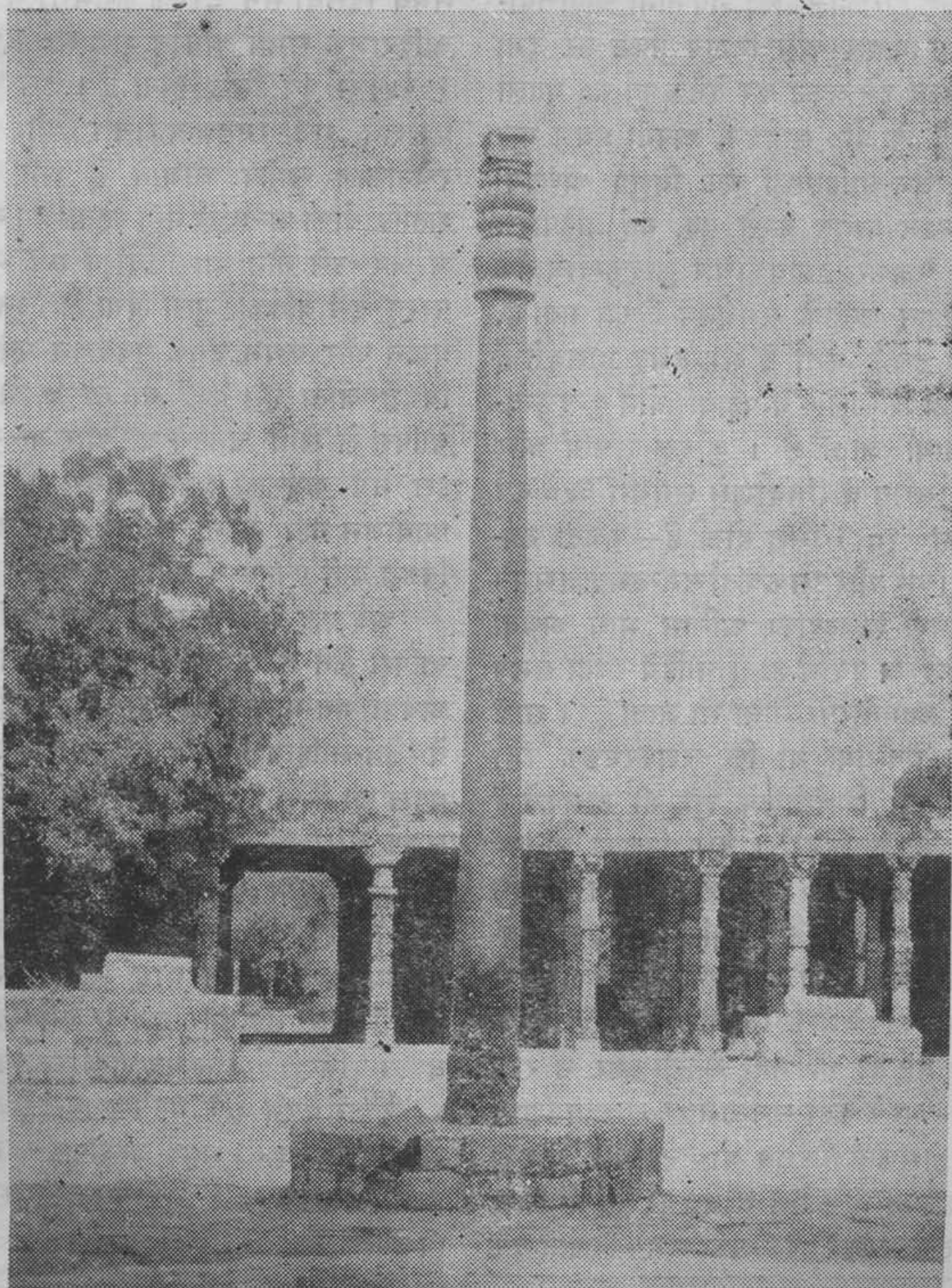

महरौलीका लोह स्तम्भ

Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रत्नकरण्डके कर्तृत्व-विषयमें मेरा विचार और निर्णय

[सम्पादकीय]

(गत किरणसे आगे)

अब मैं प्रो. हीरालालजीकी शेष तीनों आपत्तियों-पर भी अपना विचार और निर्णय प्रकट कर देना चाहता हूं; परन्तु उसे प्रकट कर देनेके पूर्व यह बतला देना चाहता हूँ कि प्रो० साहबने, अपनी प्रथम मूल आपत्तिको 'जैन-साहित्यका एक विलुप्त अध्याय' नामक निबन्धमें प्रस्तुत करते हुए, यह प्रतिपादन किया था कि 'रत्नकरण्डश्रावकाचार कुन्दकुन्दाचार्यके उपदेशोंके पश्चात् उन्हींके समर्थनमें लिखा गया है, और इसलिये इसके कर्ता वे समन्तभद्र होसकते हैं जिनका उल्लेख शिलालेख व पट्टावलियोंमें कुन्दकुन्द-के पश्चात् पाया जाता है। कुन्दकुन्दाचार्य और उमास्वामिका समय वीरनिर्वाणसे लगभग ६५० वर्ष पश्चात् (वि सं० १८०) सिद्ध होता है—फलतः रत्न-करण्डश्रावकाचार और उसके कर्ता समन्तभद्रका समय विक्रमकी दूसरी शताब्दीका अन्तिम भाग अथवा तीसरी शताब्दीका पूर्वार्ध होना चाहिये (यही समय जैनसमाजमें आमतौरपर माना भी जाता है)। साथ ही, यह भी बतलाया था कि 'रत्नकरण्डके कर्ता ये समन्तभद्र उन शिवकोटिके गुरु भी होसकते हैं जो रत्नमालाके कर्ता हैं'[1]। इस पिछली बातपर आपत्ति करते हुए पं० दरबारीलालजीने अनेक युक्तियोंके आधारपर जब यह प्रदर्शित किया कि रत्न-माला एक आधुनिक ग्रन्थ है, रत्नकरण्डश्रावकाचारसे शताब्दियों बादकी रचना है, विक्रमकी ११वीं शताब्दी-के पूर्वकी तो वह हो ही नहीं सकती और न रत्न-करण्डश्रावकाचारके कर्ता समन्तभद्रके साक्षात् शिष्य की कृति ही होसकती है[2] तब प्रो० साहबने उत्तरकी धुनमें कुछ कल्पित युक्तियोंके आधारपर यह तो लिख दिया कि "रत्नकरण्डकी रचनाका समय विद्यानन्दके समय (ईसवी सन् ८१६के लगभग) के पश्चात् और वादिराजके समय अर्थात् शक सं० ९४७ (ई० सन् १०२५) से पूर्व सिद्ध होता है। इस समयावधिके प्रकाशमें रत्नकरण्डश्रावकाचार और रत्नमालाका रचनाकाल समीप आजाते हैं और उनके बीच शताब्दियोंका अन्तराल नहीं रहता"[1]। साथ ही आगे चलकर उसे तीन आपत्तियोंका रूप भी दे दिया[2]; परन्तु इस बातको भुला दिया कि उनका यह सब प्रयत्न और कथन उनके पूर्वकथन एवं प्रतिपादनके विरुद्ध जाता है। उन्हें या तो अपने पूर्वकथनको वापिस ले लेना चाहिये था और या उसके विरुद्ध इस नये कथनका प्रयत्न तथा नई आपत्तियोंका आयोजन नहीं करना चाहिये था। दोनों परस्पर विरुद्ध बातें एक साथ नहीं चल सकतीं।

अब यदि प्रोफेसर साहब अपने उस पूर्व कथनको वापिस लेते हैं तो उनकी वह थियोरी (Theory) अथवा मत-मान्यता ही बिगड़ जाती है जिसे लेकर वे 'जैन-साहित्यका एक विलुप्त अध्याय' लिखनेमें प्रवृत्त हुए हैं और यहाँ तक लिख गये हैं कि 'बोडिक-सङ्घके संस्थापक शिवभूति, स्थविरावलीमें उल्लिखित आर्य शिवभूति, भगवती आराधनाके कर्ता शिवार्य और उमास्वातिके गुरुके गुरु शिवश्री ये चारों एक ही व्यक्ति हैं। इसी तरह शिवभूतिके शिष्य एवं उत्तराधिकारी भद्र, निर्युक्तियोंके कर्ता भद्रबाहु, द्वादश-वर्षीय दुर्भिक्षकी भविष्यवाणीके कर्ता व दक्षिणापथ-को विहार करने वाले भद्रबाहु, कुन्दकुन्दाचार्यके गुरु भद्रबाहु, वनवासी सङ्घके प्रस्थापक सामन्तभद्र और आप्तमीमांसाके कर्ता समन्तभद्र ये सब भी एक ही व्यक्ति हैं।'

---

१ जैन-इतिहासका एक विलुप्त अध्याय पृ० १८, २०।
२ अनेकान्त वर्ष ६, किरण १२, पृ० ३८०-३८२।

१ अनेकान्त वर्ष ७, किरण ५-६, पृ० ५४। २ अनेकान्त वर्ष ८, कि. ३, पृ० १३२ तथा वर्ष ६, कि. १ पृ० ६, १०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और यदि प्रोफेसर साहब अपने उस पूर्व-कथनको वापिस न लेकर पिछली तीन युक्तियोंको ही वापिस लेते हैं तो फिर उनपर विचारकी ज़रूरत ही नहीं रहती—प्रथम मूल आपत्ति ही विचारके योग्य रह जाती है और उसपर ऊपर विचार किया ही जा चुका है।

यह भी होसकता है कि प्रो०साहबके उक्त विलुप्त अध्यायके विरोधमें जो दो लेख (१ क्या निर्युक्तिकार भद्रबाहु और स्वामी समन्तभद्र एक हैं?, २ शिवभूति, शिवार्य और शिवकुमार) वीरसेवामन्दिरके विद्वानों द्वारा लिखे जाकर अनेकान्तमें प्रकाशित हुए हैं[1] और जिनमें विभिन्न आचार्योंके एकीकरणकी मान्यताका युक्तिपुरस्सर खण्डन किया गया है तथा जिनका अभीतक कोई भी उत्तर साढ़े तीन वर्षका समय बीत जानेपर भी प्रो० साहबकी तरफसे प्रकाशमें नहीं आया, उन-परसे प्रो० साहबका विलुप्त-अध्याय-सम्बन्धी अपना अधिकांश विचार ही बदल गया हो और इसीसे वे भिन्न कथन-द्वारा शेष तीन आपत्तियोंको खड़ा करने-में प्रवृत्त हुए हों। परन्तु कुछ भी हो, ऐसी अनिश्चित दशामें मुझे तो शेष तीनों आपत्तियोंपर भी अपना विचार एवं निर्णय प्रकट कर देना ही चाहिये। तदनुसार ही उसे आगे प्रकट किया जाता है।

(२) रत्नकरण्ड और आप्तमीमांसाका भिन्न-कर्तृत्व सिद्ध करनेके लिये प्रो० साहबकी जो दूसरी दलील (युक्ति) है वह यह है कि "रत्न-करण्डका कोई उल्लेख शक संवत् ९४७ (वादिराजके पार्श्वनाथचरितके रचनाकाल) से पूर्वका उपलब्ध नहीं है तथा उसका आप्तमीमांसाके साथ एककर्तृत्व बतलाने वाला कोई भी सुप्राचीन उल्लेख नहीं पाया जाता।" यह दलील वास्तवमें कोई दलील नहीं है; क्योंकि उल्लेखाऽनुपलब्धिका भिन्नकर्तृत्वके साथ कोई अविनाभावी सम्बन्ध नहीं है—उल्लेखके न मिलनेपर भी दोनोंका एक कर्ता होनेमें स्वरूपसे कोई बाधा प्रतीत नहीं होती। इसके सिवाय यह प्रश्न पैदा होता है कि रत्नकरण्डका वह पूर्ववर्ती उल्लेख प्रो. सा. को उपलब्ध नहीं है या किसीको भी उपलब्ध नहीं है अथवा वर्तमानमें कहीं उसका अस्तित्व ही नहीं और पहले भी उसका अस्तित्व नहीं था? यदि प्रो० साहबको वह उल्लेख उपलब्ध नहीं और किसी दूसरेको उपलब्ध हो तो उसे अनुपलब्ध नहीं कहा जासकता—भले ही वह उसके द्वारा अभीतक प्रकाश-में न लाया गया हो। और यदि किसीके द्वारा प्रकाश-में न लाये जानेके कारण ही उसे दूसरोंके द्वारा भी अनुपलब्ध कहा जाय और वर्तमान साहित्यमें उसका अस्तित्व हो तो उसे सर्वथा अनुपलब्ध अथवा उस उल्लेखका अभाव नहीं कहा जा सकता। और वर्तमान साहित्यमें उस उल्लेखके अस्तित्वका अभाव तभी कहा जा सकता है जब सारे साहित्यका भले प्रकार अवलोकन करनेपर वह उसमें न पाया जाता हो। सारे वर्तमान जैनसाहित्यका अवलोकन न तो प्रो० साहबने किया है और न किसी दूसरे विद्वानके द्वारा ही वह अभी तक हो पाया है। और 'जो साहित्य लुप्त होचुका है उसमें वैसा कोई उल्लेख नहीं था इसे तो कोई भी दृढताके साथ नहीं कह सकता। प्रत्युत इसके, वादिराजके सामने शक सं० ९४७ में जब रत्नकरण्ड खूब प्रसिद्धिको प्राप्त था और उससे कोई ३० या ३५ वर्ष बाद ही प्रभाचन्द्राचार्यने उसपर संस्कृत टीका लिखी है और उसमें उसे साफ तौरपर स्वामी समन्तभद्रकी कृति घोषित किया है, तब उसका पूर्व साहित्यमें उल्लेख होना बहुत कुछ स्वा-भाविक जान पड़ता है। वादिराजके सामने कितना ही जैनसाहित्य ऐसा उपस्थित था जो आज हमारे सामने उपस्थित नहीं है और जिसका उल्लेख उनके ग्रंथोंमें मिलता है। ऐसी हालतमें पूर्ववर्ती उल्लेखका उपलब्ध न होना कोई खास महत्व नहीं रखता और न उसके उपलब्ध न होने मात्रसे रत्नकरण्डकी रचना-को वादिराजके सम-सामयिक ही कहा जा सकता है, जिसके कारण आप्तमीमांसा और रत्नकरण्डके भिन्न कर्तृत्वकी कल्पनाको बल मिलता।

दूसरी बात यह है कि उल्लेख दो प्रकारका होता है—एक ग्रन्थनामका और दूसरा ग्रन्थके साहित्य

१ अनेकान्त वर्ष ६, कि० १०-११ और वर्ष ७, कि० १-२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा उसके किसी विषय-विशेषका। वादिराजसे पूर्वका जो साहित्य अभीतक अपनेको उपलब्ध है उसमें यदि ग्रन्थका नाम 'रत्नकरण्ड' उपलब्ध नहीं होता तो उससे क्या? रत्नकरण्डका पद-वाक्यादिके रूपमें साहित्य और उसका विषयविशेष तो उपलब्ध होरहा है; तब यह कैसे कहा जा सकता है कि 'रत्नकरण्डका कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं है'? नहीं कहा जा सकता। आ० पूज्यपादने अपनी सर्वार्थसिद्धिमें स्वामी समन्तभद्रके ग्रन्थोंपरसे उनके द्वारा प्रतिपादित अर्थको कहीं शब्दानुसरणके, कहीं पदानुसरणके, कहीं वाक्यानुसरणके, कहीं अर्थानुसरणके, कहीं भावानुसरणके, कहीं उदाहरणके, कहीं पर्यायशब्दप्रयोगके और कहीं व्याख्यान-विवेचनादिके रूपमें पूर्णतः अथवा अंशतः अपनाया है—ग्रहण किया है—और जिसका प्रदर्शन मैंने 'सर्वार्थसिद्धिपर समन्तभद्रका प्रभाव' नामक अपने लेखमें किया है[१]। उसमें आप्तमीमांसा, स्वयंभूस्तोत्र और युक्त्यनुशासनके अलावा रत्नकरण्ड-श्रावकाचारके भी कितने ही पद-वाक्योंको तुलना करके रक्खा गया है जिन्हें सर्वार्थसिद्धिकारने अपनाया है, और इस तरह जिनका सर्वार्थसिद्धिमें उल्लेख पाया जाता है। अकलङ्कदेवके तत्त्वार्थराजवार्तिक और विद्यानन्दके श्लोकवार्तिकमें भी ऐसे उल्लेखोंकी कमी नहीं है। उदाहरणके तौरपर तत्त्वार्थसूत्र-गत ७वें अध्यायके 'दिग्देशाऽनर्थदण्ड' नामक २१ वें सूत्रसे सम्बन्ध रखने वाले "भोग-परिभोग-संख्यानं पञ्चविधं त्रसघात-प्रमाद-बहुवधाऽनिष्टाऽनुपसेव्य-विषयभेदात्" इस उभय-वार्तिक-गत वाक्य और इसकी व्याख्याओंको रत्नकरण्डके 'त्रसहतिपरिहरणार्थं,' 'अल्पफलबहुविघातात्,' 'यदनिष्टं तद् व्रतयेत्' इन तीन पद्यों (नं० ८४, ८५, ८६) के साथ तुलना करके देखना चाहिये, जो इस विषयमें अपनी खास विशेषता रखते हैं।

परन्तु मेरे उक्त लेखपरसे जब रत्नकरण्ड और सर्वार्थसिद्धिके कुछ तुलनात्मक अंश उदाहरणके तौरपर प्रो० साहबके सामने यह बतलानेके लिये रक्खे गये कि 'रत्नकरण्ड सर्वार्थसिद्धिके कर्ता पूज्यपादसे भी पूर्वकी कृति है और इसलिये रत्नमालाके कर्ता शिवकोटिके गुरु उसके कर्ता नहीं हो सकते' तो उन्होंने उत्तर देते हुए लिख दिया कि "सर्वार्थसिद्धिकारने उन्हें रत्नकरण्डसे नहीं लिया, किन्तु सम्भव है रत्नकरण्डकारने ही अपनी रचना सर्वार्थसिद्धिके आधारसे की हो"। साथ ही रत्नकरण्डके उपान्त्य-पद्य 'येन स्वयं वीतकलङ्कविद्या'को लेकर एक नई कल्पना भी कर डाली और उसके आधारपर यह घोषित कर दिया कि 'रत्नकरण्डकी रचना न केवल पूज्यपादसे पश्चात्कालीन है, किन्तु अकलङ्क और विद्यानन्दसे भी पीछेकी है'। और इसीको आगे चलकर चौथी आपत्तिका रूप दे दिया। यहाँ भी प्रो० साहबने इस बातको भुला दिया कि 'शिलालेखोंके उल्लेखानुसार कुन्दकुन्दाचार्यके उत्तरवर्ती जिन समन्तभद्रको रत्नकरण्डका कर्ता बतला आए हैं उन्हें तो शिलालेखोंमें भी पूज्यपाद, अकलङ्क और विद्यानन्दके पूर्ववर्ती लिखा है, तब उनके रत्नकरण्डकी रचना अपने उत्तरवर्ती पूज्यपादादिके बाद की अथवा सर्वार्थसिद्धिके आधारपर की हुई कैसे हो सकती है?' अस्तु; इस विषयमें विशेष विचार चौथी आपत्तिके विचाराऽवसरपर ही किया जायगा।

यहाँपर मैं साहित्यिक उल्लेखका एक दूसरा स्पष्ट उदाहरण ऐसा उपस्थित कर देना चाहता हूँ जो ईसाकी ७वीं शताब्दीके ग्रन्थमें पाया जाता है और वह है रत्नकरण्डश्रावकाचारके निम्न पद्यका सिद्धसेनके न्यायावतारमें ज्योंका त्यों उद्धृत होना—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्ट-विरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथ-घट्टनम् ॥९॥

यह पद्य रत्नकरण्डका एक बहुत ही आवश्यक अङ्ग है और उसमें यथास्थान-यथाक्रम मूलरूपसे पाया जाता है। यदि इस पद्यको उक्त ग्रन्थसे अलग कर दिया जाय तो उसके कथनका सिलसिला ही बिगड़ जाय। क्योंकि ग्रन्थमें, जिन आप्त, आगम (शास्त्र) और तपोभृत् (तपस्वी) के अष्ट अङ्गसहित

१ अनेकान्त वर्ष ५, किरण १०-११, पृ० ३४६ ३५२

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और त्रिमूढतारहित श्रद्धानको सम्यग्दर्शन बतलाया गया है उनका क्रमशः स्वरूप निर्देश करते हुए, इस पद्यसे पहले 'आप्त' का और इसके अनन्तर 'तपोभृत' का स्वरूप दिया है; यह पद्य यहाँ दोनोंके मध्यमें अपने स्थानपर स्थित है, और अपने विषयका एक ही पद्य है। प्रत्युत इसके, न्यायावतारमें, जहाँ भी यह नम्बर ९ पर स्थित है, इस पद्यकी स्थिति मौलिकताकी दृष्टिसे बहुत ही सन्दिग्ध जान पड़ती है—यह उसका कोई आवश्यक अङ्ग मालूम नहीं होता और न इसको निकाल देनेसे वहाँ ग्रन्थके सिलसिलेमें अथवा उसके प्रतिपाद्य विषयमें ही कोई बाधा आती है। न्यायावतारमें परोक्ष प्रमाणके 'अनुमान' और 'शब्द' ऐसे दो भेदोंका कथन करते हुए, स्वार्थानुमानका प्रतिपादन और समर्थन करनेके बाद इस पद्यसे ठीक पहले 'शाब्द' प्रमाणके लक्षणका यह पद्य दिया हुआ है—

'दृष्टेष्टाव्याहताद्वाक्यात् परमार्थाभिधायिनः ।
तत्त्वग्राहितयोत्पन्नं मानं शाब्दं प्रकीर्तितम् ॥८॥

इस पद्यकी उपस्थितिमें इसके बादका उपर्युक्त पद्य, जिसमें शास्त्र (आगम) का लक्षण दिया हुआ है, कई कारणोंसे व्यर्थ पड़ता है। प्रथम तो उसमें शास्त्रका लक्षण आगम-प्रमाणरूपसे नहीं दिया—यह नहीं बतलाया कि ऐसे शास्त्रसे उत्पन्न हुआ ज्ञान[२] आगम प्रमाण अथवा शाब्दप्रमाण कहलाता है; बल्कि सामान्यतया आगमपदार्थके रूपमें निर्दिष्ट हुआ है, जिसे 'रत्नकरण्डमें सम्यग्दर्शनका विषय बतलाया गया है। दूसरे, शाब्दप्रमाणसे शास्त्रप्रमाण कोई भिन्न वस्तु भी नहीं है, जिसकी शाब्दप्रमाणके बाद पृथक् रूपसे उल्लेख करनेकी जरूरत होती, बल्कि उसीमें अन्तर्भूत है। टीकाकारने भी शाब्दके 'लौकिक' और 'शास्त्रज' ऐसे दो भेदोंकी कल्पना करके, यह सूचित किया है कि इन दोनोंका ही लक्षण इस आठवें पद्यमें आगया है'[१]। इससे ९वें पद्यमें शाब्दके 'शास्त्रज' भेदका उल्लेख नहीं, यह और भी स्पष्ट होजाता है। तीसरे, ग्रन्थभरमें, इससे पहले, 'शास्त्र' या 'आगम-शब्दका कहीं प्रयोग नहीं हुआ जिसके स्वरूपका प्रतिपादक ही यह ९ वाँ पद्य समझ लिया जाता, और न 'शास्त्रज' नामके भेदका ही मूलग्रन्थमें कोई निर्देश है जिसके एक अवयव (शास्त्र) का लक्षण-प्रतिपादक यह पद्य हो सकता। चौथे, यदि यह कहा जाय कि ८ वें पद्यमें 'शाब्द' प्रमाणको जिस वाक्यसे उत्पन्न हुआ बतलाया गया है उसीका 'शास्त्र' नामसे अगले पद्यमें स्वरूप दिया गया है तो यह बात भी नहीं बनती; क्योंकि ८ वें पद्यमें ही 'दृष्टेष्टाव्याहती' आदि विशेषणोंके द्वारा वाक्यका स्वरूप दे दिया गया है और वह स्वरूप अगले पद्यमें दिये हुए शास्त्रके स्वरूपसे प्रायः मिलता जुलता है—उसके 'दृष्टेष्टाव्याहत' का 'अदृष्टेष्टविरोधक' के साथ साम्य है और उसमें 'अनुल्लंघ्य' तथा 'आप्तोपज्ञ' विशेषणोंका भी समावेश हो सकता है; 'परमार्थाभिधायि' विशेषण 'कापथघट्टन' और 'सार्व' विशेषणोंके भावका द्योतक है; और शाब्दप्रमाणको 'तत्त्वग्राहितयोत्पन्न' प्रतिपादन करनेसे यह स्पष्ट ध्वनित है कि वह वाक्य 'तत्त्वोपदेशकृत्' माना गया है—इस तरह दोनों पद्योंमें बहुत कुछ साम्य पाया जाता है। ऐसी हालतमें समर्थनमें उद्धरणके सिवाय ग्रन्थ-सन्दर्भके साथ उसकी दूसरी कोई गति नहीं; उसका विषय पुनरुक्त ठहरता है। पाँचवें, ग्रन्थकारने स्वयं अगले पद्यमें वाक्यको उपचारसे 'परार्थानुमान' बतलाया है। यथा—

स्व-निश्चयवदन्येषां निश्चयोत्पादनं बुधैः ।
परार्थं मानमाख्यातं वाक्यं तदुपचारतः ॥१०॥

---

१ सिद्धर्षिकी टीकामें इस पद्यसे पहले यह प्रस्तावना-वाक्य दिया हुआ है—"तदेवं स्वार्थानुमानलक्षणं प्रतिपाद्य तद्गतां भ्रान्ततांविप्रतिपत्तिं च निराकृत्य अधुना प्रतिपादित-परार्थानुमानलक्षण एवाल्पवक्तव्यत्वात् तावच्छाब्द-लक्षणमाह"।

२ स्व-परावभासी निर्बाध ज्ञानको ही न्यायावतारके प्रथम पद्यमें प्रमाणका लक्षण बतलाया है, इसलिये प्रमाणके प्रत्येक भेदमें उसकी व्याप्ति होनी चाहिये।

१ "शाब्दं च द्विधा भवति—लौकिकं शास्त्रजं चेति। तत्रेदं द्वयोरपि साधारणं लक्षणं प्रतिपादितम्"।

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

इन सब बातों अथवा कारणोंसे यह स्पष्ट है कि न्यायावतारमें 'आप्तोपज्ञ' नामक ९वें पद्यकी स्थिति बहुत ही सन्दिग्ध है, वह मूल ग्रन्थका पद्य मालूम नहीं होता। उसे मूलग्रन्थकार-विरचित ग्रन्थका आवश्यक अङ्ग माननेसे पूर्वोत्तर पद्योंके मध्यमें उसकी स्थिति व्यर्थ पड़ जाती है, ग्रन्थकी प्रतिपादन-शैली भी उसे स्वीकार नहीं करती, और इसलिये वह अवश्य ही वहाँ एक उद्धृत पद्य जान पड़ता है, जिसे 'वाक्य'के स्वरूपका समर्थन करनेके लिये रत्नकरण्ड-परसे 'उक्तञ्च' आदिके रूपमें उद्धृत किया गया है। उद्धरणका यह कार्य यदि मूलग्रन्थकारके द्वारा नहीं हुआ है तो वह अधिक समय बादका भी नहीं है; क्योंकि विक्रमकी १०वीं शताब्दीके विद्वान आचार्य सिद्धर्षिकी टीकामें यह मूलरूपसे परिगृहीत है, जिससे यह मालूम होता है कि उन्हें अपने समयमें न्यायावतारकी जो प्रतियाँ उपलब्ध थीं उनमें यह पद्य मूलका अङ्ग बना हुआ था। और जबतक सिद्धर्षिसे पूर्वकी किसी प्राचीन प्रतिमें उक्त पद्य अनुपलब्ध न हो तबतक प्रो० साहब तो अपनी विचार-पद्धति[1]के अनुसार यह कह ही नहीं सकते कि वह ग्रन्थका अङ्ग नहीं—ग्रन्थकारके द्वारा योजित नहीं हुआ अथवा ग्रन्थकारसे कुछ अधिक समय बाद उसमें प्रविष्ट या प्रक्षिप्त हुआ है। चुनाँचे प्रो० साहबने वैसा कुछ कहा भी नहीं और न उस पद्यके न्यायावतारमें उद्धृत होनेकी बातका स्पष्ट शब्दोंमें कोई युक्तिपुरस्सर विरोध ही प्रस्तुत किया है—वे उसपर एकदम मौन हो रहे हैं।

अतः ऐसे प्रबल साहित्यिक उल्लेखोंकी मौजूदगी-में रत्नकरण्डको विक्रमकी ११वीं शताब्दीकी रचना अथवा रत्नमालाकारके गुरुकी कृति नहीं बतलाया जा सकता और न इस कल्पित समयके आधारपर उसका आप्तमीमांसासे भिन्नकर्तृत्व ही प्रतिपादित किया जा सकता है। यदि प्रो० साहब साहित्यके उल्लेखादिको कोई महत्व न देकर ग्रन्थके नामोल्लेख-को ही उसका उल्लेख समझते हों तो वे आप्तमीमांसा-को कुन्दकुन्दाचार्यसे पूर्वकी तो क्या, अकलङ्कके समयसे पूर्वकी अथवा कुछ अधिक पूर्वकी भी नहीं कह सकेंगे; क्योंकि अकलङ्कसे पूर्वके साहित्यमें उसका नामोल्लेख नहीं मिल रहा है। ऐसी हालतमें प्रो० साहबकी दूसरी आपत्तिका कोई महत्व नहीं रहता, वह भी समुचित नहीं कही जा सकती और न उसके द्वारा उनका अभिमत ही सिद्ध किया जा सकता है।

(अगली किरणमें समाप्त)

[1] प्रो० साहबकी इस विचारपद्धतिका दर्शन उस पत्रपरसे भले प्रकार होसकता है जिसे उन्होंने मेरे उस पत्रके उत्तरमें लिखा था जिसमें उनसे रत्नकरण्डके उन सात पद्योंकी बाबत सयुक्तिक राय माँगी गई थी जिन्हें मैंने रत्नकरण्डकी प्रस्तावनामें सन्दिग्ध करार दिया था और जिस पत्रको उन्होंने मेरे पत्र-सहित अपने पिछले लेख (अनेकान्त वर्ष ८ कि० १ पृ० १२) में प्रकाशित किया है।

वीरसेवामन्दिरको सहायता

श्रीमान् ला० घनश्यामदासजी जैन सङ्घी मुलतान वाले प्रोप्राइटर 'इन्द्राहोजरी मिल्स' जयपुरने, पं० अजितकुमारजी शास्त्रीकी प्रेरणाको पाकर स्वर्गीय ला० बिहारीलालजीके दानमेंसे १२५) रु० वीरसेवामन्दिरको उसकी लायब्रेरीकी सहायतार्थ प्रदान किये हैं। इसके लिये उक्त लाला साहब और शास्त्रीजी दोनों ही धन्यवादके पात्र हैं।

अधिष्ठाता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमारे पूर्वज—

पं० गोपालदासजी वरैया

[लेखक अयोध्याप्रसाद गोयलीय]

आर्यसमाजमें जो स्थान स्वामी श्रद्धानन्द, रायजादा हंसराज और मुस्लिम क़ौममें सर सैयद अहमदका है वही स्थान जैनसमाजमें पं० गोपालदासजी वरैयाको प्राप्त है। जिस समय जैनसमाज अपने धर्मसे अनभिज्ञ मिथ्यान्धकारमें फंसा हुआ था, उसके चारों ओर शिक्षा-प्रसारका उज्ज्वल प्रकाश फैल रहा था, और उसकी चकाचौंधसे चुन्धियाकर इधर-उधर ठोकरें खा रहा था, तभी उसके हाथमें धर्मज्ञानका दीपक देकर वरैयाजीने उसे यथार्थ मार्ग देखनेका अवसर दिया। आज जो जैनसमाजमें सर्टीफिकेटशुदा विद्वद्वर्ग नज़र आ रहा है, उसमें अधिकांश उनके शिष्यों और प्रशिष्योंका ही समूह अधिक है।

वरैयाजीका आविर्भाव होनेसे पूर्व भारतमें धर्मशिक्षाप्रसार और सम्प्रदाय संरक्षणकी होड़ सी लगी हुई थी। आर्यसमाज समूचे भारतमें ही नहीं, अरब, ईरानमें भी वैदिकधर्मका झण्डा फहरानेका मनसूबा डंकेकी चोट जाहिर कर रहा था; उसके गुरुकुल, महाविद्यालय, हाईस्कूल और कालेज पनवाड़ीकी दुकानकी तरह तीव्रगतिसे खुलते जारहे थे। मुसलमानोंके भी देवबन्दमें धार्मिक और अलीगढ़में राज्य-शिक्षा-प्रणालीके केन्द्र खुल चुके थे। ईसाइयोंकी तो होड़ ही क्या, हर शहरमें मिशन-शिक्षा केन्द्रोंका जालसा बिछ गया था। लाखोंकी संख्यामें धार्मिक ट्रेक्ट वितरित ही नहीं होरहे थे, अपितु बपित्समां दिया जारहा था। केवल अभागा जैनसमाज खिसियानासा अकर्मण्य बना अलग-अलग खड़ा था।

शायद अकलङ्क और समन्तभद्रकी आत्मा जैनसमाजकी इस दयनीय स्थितिसे द्रवीभूत होगई और उन्होंने अपना अलौकिकज्ञान और शास्त्रार्थकी प्रतिभा देकर फिर एकबार जैनधर्मकी दुन्दुभि बजानेको इस कृशकाय सलौने व्यक्तिको उत्साहित किया।

वरैयाजीने जो अभूतपूर्व कार्य किया, भले ही हम काहिल शिष्योंद्वारा वह लिखा नहीं गया है; परन्तु उनके महत्वपूर्ण कार्यके साक्षी आज आचार्य, तीर्थ, शास्त्री और पंडित रूपमें समाजमें सर्वत्र देखनेको मिलते हैं।

हमारे यहां तीर्थङ्करोंका प्रामाणिक जीवन-चरित्र नहीं, आचार्योंके कार्य-कलापकी तालिका नहीं, जैन-संघके लोकोपयोगी कार्योंकी कोई सूची नहीं, जैनराजाओं, मन्त्रियों, सेनानायकोंके बल-पराक्रम और शासन प्रणालीका कोई लेखा नहीं साहित्यिकोंका कोई परिचय नहीं, और तो और हमारी आंखोंके सामने कल-परसों गुज़रनेवाले— दयाचन्द्र गोयलीय, बाबू देवकुमार, जुगमन्दरदास जज, वैरिष्टर चम्पतराय, ब्र० शीतलप्रसाद, बा० सूरजभान, अर्जुनलाल सेठी आदि विभूतियोंका जिक्र नहीं, और ये जो हमारे २-४ बड़े बूढ़े मौतकी चौखटपर खड़े हैं, इनसे भी हमने इनकी विपदाओं और अनुभवोंको नहीं सुना है। और शायद भविष्यमें एक पीढ़ीमें जन्म लेकर मर जाने वालों तक केलिये उल्लेख करनेका हमारे समाजको उत्साह नहीं होगा।

मेरे होश सम्हालने— कार्यक्षेत्रमें आने—से पूर्व ही वरैयाजी स्वर्गस्थ हो गये, न मैं उनके दर्शनोंका ही पुण्य प्राप्त कर सका, न उनके सम्बन्धमें ही विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सका। केवल एक लेख उनकी मृत्युउपरान्त शायद पं०मक्खनलालजी न्यायालङ्कारका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सरस्वतीमें उस समय पढ़ा था। उनके दर्शन न हुए तो न सही, उनकी कार्यस्थली मौरेनाकी रज ही किसी तरह मस्तकपर लगाऊँ. उनके समवयस्क और सहयोगियोंसे उनके संस्मरण सुनकर कानोंको तृप्त करूँ ऐसी प्रबल इच्छा बनी रहती थी कि दिसम्बर १९४० में परिषद्के कार्यकर्ताओंके साथ मौरेना जानेका अवसर भी प्राप्त हो गया। वरैयाजीके साझेदार ला० अयोध्याप्रसाद ※ तथा बा० नेमिचन्द वकील आदि १०-१२ बन्धुओंसे रातभर वरैयाजीके सम्बन्धमें कुरेद-कुरेद कर बातें जाननेका प्रयत्न किया किन्तु एक-दो घटनाके सिवा कुछ नहीं मालूम हो सका। आज उन्हीं स्मृतिकी धुन्धली रेखाओंको कागजपर खींचनेका प्रयास कर रहा हूं।

जिन सज्जनोंको उनके सम्बन्धमें कुछ उल्लेखनीय बातें मालूम हों, या पत्र सुरक्षित हों, वे हमारे पास कृपा-पूर्वक भिजवाएँ। हम उनका उपयोगी अंश धन्यवादपूर्वक अनेकान्तमें प्रकाशित करेंगे। ऐसे ही छोटे छोटे संस्मरण और पत्र इतिहास-निर्माणकी बहुमूल्य सामग्री बन जाते हैं। जैनसमाजके अन्य कार्य-कर्ताओंके भी संस्मरण और पत्र भेजनेके लिये हम निमन्त्रण देते हैं। भले ही वह संस्मरण और पत्र साधारणसे प्रतीत होते हों, फिर भी उन्हें भिजवाइये। न जाने उसमें क्या कामकी बात निकल आये।

—१—

सामाजिक क्षेत्रमें आनेसे पूर्व किसी समय वरैयाजी एक रायबहादुर सेठ के ÷ यहां ३०) रु० मासिकपर कार्य करते थे। एकबार सेठ साहब आपको भी तीर्थयात्रामें अपने साथ ले गये। शास्त्रप्रवचनके साथ-साथ गुमास्तेकी उपयोगिताका भी विचार करके इन्हें साथ लिया गया था। वरैयाजी शास्त्र-प्रवचन में तो पटु थे। किन्तु गुमास्तगीरीकी कलामें कोरे थे। सफरमें रेल्वे टिकिटोंकी कतरव्योंत, लगेज, भाड़ा दिये बिना पार करना, चुङ्गीवालोंको चकमा देना, स्टेशन बाबुओंको झांसा देना, कुलियों-तांगेवालोंको बातोंमें राजी करना, थर्डको भी विस्तर बिछाकर सेकिण्ड बना लेना, धर्मशालाके चपरासियोंसे भी भरपूर सुविधा लेना और इनामकी जगह अंगूठा दिखा देनेमें जो जितना प्रवीण होता है, वही प्रवासमें रखनेकेलिये उपयुक्त समझा जाता है। वरैयाजी इस शिक्षामें कोरे थे। इन्हें शिक्षित और चतुर समझकर टिकिट लानेका कार्य दिया गया। ये टिकिटोंमें कुछ कतरव्योंत तो क्या करते उल्टा लगेज तुलवाकर उसका भी भाड़ा दे आये।

सेठ और रायबहादुर होकर उनका सामान तुल जाए इससे अधिक और सेठ साहबका क्या अपमान होता? धनियोंके यहां चापलूस और चुगलखोरोंकी क्या कमी? उन्होंने वरैयाजीके बुद्धक होनेका ऐसा सजीव वर्णन किया कि वेचारे शिकारपुरी न होते हुए भी सेठ साहबकी नजरोंमें शिकारपुरी होकर रह गये। जहां सत्यका प्रवेश नहीं, यथार्थ बात सुननेका चलन नहीं। धोखा, छल, फरेब, मायाचार ही जहां उन्नतिके साधन हों बिलफ और चकमा खाना ही जहां अभीष्ट हो वहां वरैयाजी कितने दिन निभते? किनाराकशी ही स्वाभिमानकी रक्षाके लिये उन्होंने आवश्यक समझी।

—२—

यह मूर्खता करके वरैयाजी पछताये नहीं, यह अचौर्यव्रत उनके पञ्चाणुव्रतोंमेंसे तीसरा आवश्यक व्रत था। एकवार वे सपरिवार बम्बईसे आगरे आये। घर आकर कई रोज बाद मार्ग-व्यय आदि लिखा तो मालूम हुआ नौकरने उनके तीन वर्षके बालकका टिकट ही नहीं लिया। मालूम होनेपर बड़ी आत्म-ग्लानि हुई और आपने तत्काल स्टेशनमास्टरके पास पहुंचकर क्षमा-याचना करते हुए टिकिटका मूल्य उनकी मेजपर रख दिया। स्टेशनमास्टरने समझाया कि २॥ वर्षसे अधिककी आयुपर टिकट लेनेका नियम है तो पर कौन इस नियमका पालन करता है। हम तो ४-५ वर्षके बालकको नजरन्दाज कर देते हैं। आपने

※ सम्भवतया यही नाम था, यदि भूलसे दूसरा नाम लिखा गया हो तो वे बन्धु क्षमा करेंगे।

÷ नाम मैंने जान बूझकर नहीं लिखा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आप टिकटका पैसा देने कोई हमारे पास आया हो, हमें ऐसा मूर्ख कभी नहीं मिला। आप बड़े भोले मालूम होते हैं. यह दाम आप उठा लीजिये, सब यूंही चलता है।" परन्तु वरैयाजी चालाक और धूर्त दुनियांके लिये सचमुच मूर्ख थे, वे दाम छोड़कर चले आये और बुद्धिपर जोर देनेपर भी अपनी इस मूर्खताका रहस्य न समझ पाये और जीवनभर ऐसी मूर्खता करते रहे।

—३—

ला० अयोध्याप्रसादजीके साझेमें मोरेनामें वरैयाजीकी आढ़तकी दुकान थी। लाला साहबका एक व्यक्तिसे लेन-देनका झगड़ा चल रहा था। आखिर व्यक्ति तङ्ग आकर बोला—"आपके साझी वरैयाजी जो निर्णय देगें, मुझे मंजूर होगा।" लालाजीने सुना तो बांछें खिल गईं। मनकी मुराद छप्पर फाड़कर आई। परन्तु निर्णय अपने विपक्षमें सुना तो उसी तरह निस्तब्ध रह गये जिस तरह ऋद्धिधारी मुनिके हाथोंमें गरमागरम खीर परोसकर रत्नोंकी वारिश देखनेको बुढ़िया आतुरतापूर्वक आकाशकी ओर देखने लगी थी और वर्षा न होनेपर लुटी-सी खड़ी रह गई थी।

लाला साहबको वरैयाजीका यह व्यवहार पसन्द न आया। "अपने होकर भी निर्णय शत्रु-पक्षमें दिया, ऐसी तैसी इस न्यायप्रियताकी। डायन भी अपना घर बख्श देती है, इनसे इतना भी न हुआ। हमें मालूम होता कि पण्डितजीके मनमें यह कालौस है तो हम क्यों इन्हें पंच स्वीकार करते? इससे तो अदालत ही ठीक थी, सौ फी सदी मुक़दमा जीतनेका वकीलने विश्वास दिलाया था। वाह साहब, अच्छी इन्होंने आपसदारी निभाई। माना कि हमारी ज्यादती थी, फिर भी क्या हुआ. आपसदारीके नाते भी तो हमारी टेक रखनी थी। जब पण्डितजीने हमारा रत्तीभर लिहाज नहीं किया तो अब इनसे क्या साझे-में निभाव होगा? भई ऐसे तोते चश्मसे तो जुदा ही भले।"

इसी तरहके विचारोंसे प्रेरित होकर लाला साहबने पण्डितजीसे साझा बांट लिया, बोलचाल बन्द कर दी। वरैयाजीसे किसीने इस आशारहित निर्णयके सम्बन्धमें जिक्र किया तो बोले—"भाई इष्टमित्रोंकी खातिर मैं अपने धर्मको तो नहीं बेचूंगा। जब मुझमें न्यायीकी स्थापना दोनों पक्षोंने कर दी तो फिर मैं अन्यायीका रूप क्यों धारण करता? मेरा धर्म मुझे न छोड़े, चाहे सारा संसार मुझे छोड़ दे तो भी मुझे चिन्ता नहीं।"

लालाजीने मुझे स्वयं उक्त घटना सुनाई थी। फर्माते थे कि—थोड़े दिन तो मुझे पण्डितजीके इस व्यवहारपर रोष सा रहा। पर धीरे-धीरे मेरा मन मुझे ही धिक्कारने लगा और फिर उनकी इस न्याय-प्रियता, सत्यवादिता, निष्पक्षता और नैतिकताके आगे मेरा सर झुक गया, श्रद्धा भक्तिसे हृदय भर गया और मैंने भूल स्वीकार करके उनसे क्षमा मांग ली। पंडितजी तो मुझसे रुष्ट थे ही नहीं, मुझे ही मान हो गया था, अतः उन्होंने मेरी कौली भर ली और फिर जीवनके अन्त तक हमारा स्नेह-सम्बन्ध बना रहा।

मुझे जिस तरह और जिस भाषामें उक्त संस्मरण सुनाये गये थे, न वे अब पूरी तरह स्मरण ही रहे हैं न उस तरहकी भाषा ही व्यक्त कर सकता हूं, फिर भी आज जो बैठे बिठाये याद आई तो लिखने बैठ गया।

डालमिया नगर, (बिहार) ४ मार्च १९४८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यशोधरचरित्र सम्बन्धी जैन-साहित्य

[लेखक श्री अगरचंद नाहटा]

कथा कहानी सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्य है। भारतवर्षमें उसकी उपयोगिताकी ओर सब समयध्यान रहा है, फलतः हजारों ग्रन्थ कथा-कहानियों एवं जीवनचरितोंके रूपमें पाये जाते हैं। मनोरञ्जन, सत्-शिक्षा एवं धर्मप्रचारके उद्देश्यसे इनका निर्माण हुआ है। भारत पुरातन कालसे धर्मप्रधान देश होने से सबसे अधिक कथा-ग्रन्थ धार्मिक आदर्शोंके प्रचारके लिये ही रचे गये हैं। इनमेंसे कईयोंका सम्बन्ध तो वास्तविक घटनाओंके साथ है; पर कई कथाएं धार्मिक अनुष्ठानोंकी ओर जनताको आकर्षित करनेके उद्देश्यसे गढ़ ली गई प्रतीत होती हैं। किन किन धार्मिक कार्योंको करके किस २ व्यक्तिने क्या लाभ उठाया? एवं किन-किन पापकार्यों द्वारा किन-किन जीवोंने अनिष्ट-फल प्राप्त किया, इन्हीं बातोंको जनताके हृदयपर अङ्कित करनेके लिये धार्मिक कथा-साहित्यका निर्माण हुआ एवं रचयिता इस कार्यमें सफल हुए भी कहे जा सकते हैं। यद्यपि आज भी कहानीका प्रचार ही सर्वाधिक है पर अब उसका उद्देश्य एवं रूप बहुत कुछ परिवर्तित हो चुका है। वर्तमान लोक-मानसके झुकावपर विचार करनेसे अब प्राचीन शैली अधिक दिन रुचिकर नहीं रह सकेगी अतः हमारे धर्मप्रधान कथा-चरित ग्रन्थोंको भी नये ढंगसे लिखकर प्रचारित करना आवश्यक हो गया है, अन्यथा उनकी उपयोगिता घटकर विनाश होना अवश्यम्भावी है।

भारतीय कथा-साहित्यमें जैनकथा-साहित्य भी अपनी विशालता एवं विविधताकी दृष्टिसे महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिसका संक्षिप्त परिचय मैं अपने 'जैनकथा-साहित्य' शीर्षक लेखमें कर चुका हूं ※ अतः यहां उसपर पुनः विचार नहीं किया जाता। कई जैनकथाएँ तो विश्वव्यापी हो गई हैं। यही उनकी जनप्रियताका ज्वलन्त उदाहरण है। जनरुचिका ध्यान रखते हुये जैन विद्वानोंने लोक-कथाओंको भी खूब अपनाया और उन कथाओंके सम्बन्धमें सैकड़ों ग्रन्थोंका निर्माण किया जिसका परिचय भी मेरे "लोक-कथाओं ÷ सम्बन्धी जैन साहित्य" एवं 'विक्रमादित्य + सम्बन्धी जैन साहित्य' शीर्षक लेखोंद्वारा पाठकोंको मिल चुका है। कई जैनकथाओंका प्रचार जैनसमाज तक ही सीमित है। पर दि० श्वे० दोनों सम्प्रदायोंमें वे समानरूपसे आहत हैं। ऐसी कथाओंमेंसे श्रीपालचरित्र सम्बन्धी साहित्यका परिचय भी अनेकान्त वर्ष २। ३ अङ्क २।७ में कई वर्ष पूर्व प्रकाशित कर चुका हूं। प्रस्तुत लेखमें ऐसे ही एक अन्य चरित सम्बन्धी साहित्यका परिचय दिया जारहा है जिसका नाम है 'यशोधरचरित्र'। दि० एवं श्वे० दोनों विद्वानोंके रचित करीब ५० ग्रन्थ इसी चरित सम्बन्धी जाननेमें आये हैं। उनकी सूची पाठकोंकी जानकारीकेलिये इस लेखमें दी जारही है।

यशोधर चरित्रकी प्राचीनता—

नृपति यशोधर कब हुए हैं। प्रमाणाभावसे समय बतलाया नहीं जासकता। कथा वस्तुपर विचार करनेपर जब देवीके आगे पशुबलिका अमानुषिक कार्य जोरोंसे चल रहा था तब उसके कुफलको बतलानेके प्रसङ्गसे इसकी रचना हुई ज्ञात होती है। प्राप्त यशोधर चरित्रोंमें सबसे प्राचीन राजर्षि प्रभञ्जन रचित ही प्रतीत होता है। वि० सं०८३५ में श्वे० उद्योतन सूरिके रचित कुवलयमाला कथामें इसका

※ जैन सिद्धान्त भास्कर वर्ष १२, अङ्क १

÷ नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका वर्ष ५२, अङ्क १

+ विक्रमस्मृति ग्रन्थ एवं जैन सत्यप्रकाश वर्ष ६, अङ्क ४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निम्नोक्त उल्लेख पाया जाता है—

सत्तू्ण जो जसहरो, जसहरचरिएण जणवए पयडो।
कलिमल पभंजणो च्चिय, पभंजणो आसि रायरिसी ॥४०॥

इससे संवत् ८३५से पूर्व प्रभञ्जनका यशोधर-चरित प्रसिद्ध ग्रन्थ माना जाता था यह सिद्ध होता है। फिर भी प्रभञ्जनका वास्तविक समय अभीतक अन्वेषणीय है।

निश्चित समयके ज्ञात ग्रन्थकारोंमें श्वे० जैनाचार्य हरिभद्रसूरिजीके "समराइच्चकहा" ग्रन्थमें कथा-नायकके पूर्वभवके प्रसङ्गमें यशोधरकी कथा पाई जाती है। हरिभद्रसूरिका समय वि.की ९वीं शती निश्चित है। प्रभञ्जनके यशोधरचरितकी प्रति अनेकान्तमें प्रकाशित मूडबिद्री-भण्डारकी सूचीसे वहाँके भण्डार-में प्राप्त होनेकी सूचना मिलती है। संस्कृत भाषामें ३६१ श्लोकमय प्रस्तुत चरितकी प्रति ४ पत्रोंकी है। मूडबिद्री-भण्डारके सञ्चालकोंसे अनुरोध है कि वे इस चरितको शीघ्र ही प्रकाशित करें, जिससे इसमें वर्णित चरितमें पिछले ग्रन्थकारोंने क्या २ परिवर्तन किये अर्थात् कथाके विकासके विषयमें विचार करनेका सुन्दर साधन सामने आ सके। जबतक वह प्रकाशित न हो, हरिभद्रसूरिके समरादित्य-चरितके अन्तर्गत यशोधरचरितको ही प्रधानता देकर पिछले चरित्र-ग्रन्थोंकी आलोचना करनेकी ओर विद्वानोंका ध्यान आकर्षित किया जाता है।

इनके परवर्ती चरित-ग्रन्थोंमें अपभ्रंशके महाकवि पुष्पदन्तका 'जसहरचरिउ' एवं महाकवि हरिषेण एवं अमरकीर्तिके अनुपलब्ध अपभ्रंश ग्रन्थ हैं। प्रभञ्जन-के साथ हरिषेणके यशोधरचरितका उल्लेख वासवसेनने अपने यशोधरचरितमें किया है। यथा—

प्रभंजनादिभिः पूर्वं, हरिषेण समन्वितैः।
यदुक्तं तत्कथं शक्यं मया बालेन भाषितुम् ॥

वासवसेनका समय मुझे ज्ञात नहीं है। उनके उल्लिखित हरिषेण, धम्मपरिक्खा नामक अपभ्रंश ग्रन्थके रचयिता होनेकी सम्भावना माननीय प्रेमीजीने (मुझे लिखित पत्रमें) की है। इसीलिये मैंने उसे अपभ्रंश-भाषामें रचित होनेका निर्देश किया है। पूर्ण निर्णय तो हरिषेणके यशोधर-चरितकी प्राप्तिपर ही निर्भर है। सम्भव है खोज करनेपर वह किसी दिगम्बर जैन ज्ञान-भण्डारमें उपलब्ध हो जाय। विद्वानोंका ध्यान उसके अन्वेषणकी ओर भी आकर्षित किया जाता है।

११वीं शताब्दीके संस्कृत-यशोधरचरितोंमें सोम-देवसूरिका यशस्तिलक चम्पू विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। संवत् १०१६ (शाके ८८१) के चैत्र शुक्ला १३ को गङ्गधारमें इसकी रचना हुई है। यशोधरकी छोटी-सी कथाका विकास कविने कितने सुन्दर ढङ्गसे किया है, इसपर भलीभाँति प्रकाश डालनेके लिये भी विद्वानोंसे अनुरोध है। संवत् १०८४ के लगभग सुप्रसिद्ध विद्वान् वादिराजने[1] ४ सर्गात्मक २९६ श्लोकोंका यशोधरचरित बनाया है। तंजौरके श्री टी० एस० कुप्पू स्वामी शास्त्रीने इसे प्रकाशित किया था, जिसका हिन्दीमें सार श्रीउदयलालजी काशलीवाल-ने सन् १९२८ में जैन-साहित्य-प्रसारक कार्यालय, बम्बईसे प्रकाशित किया था।

११वीं शताब्दीके परवर्ती वासवसेन, वादिचन्द्र, चन्दप्पवर्णी आदिका समय निश्चित नहीं हैं। ज्ञात समयके चरित्रोंका प्रारम्भ १५वीं शताब्दीमें आरम्भ होता है और १६से १८वीं शताब्दीमें बहुतसे यशोधर चरित्रोंकी संस्कृत, हिन्दी, गुजराती और राजस्थानी भाषाओंमें रचना हुई है, जिनका परिचय आगे दी जाने वाली सूचीसे भलीभाँति मिल जायगा। सूचीसे यह भी स्पष्ट है कि इसका प्रचार कन्नड, गुजरात राजपूताने आदिमें सर्वत्र था।

यशोधरचरितकी प्रसिद्धिका कारण—

जैनधर्मका सबसे बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण आदर्श अहिंसा है। वास्तवमें वह जैनधर्मकी आत्मा है।

१ वादिराजके पार्श्वनाथचरित्रका रचना काल शक सं० ९४७ है। पार्श्वनाथचरित्रका उल्लेख उनके यशोधरचरित्रमें होनेसे उसका निर्माण पार्श्वनाथचरित्रके बाद ही हुआ सिद्ध होता है। आपने काकुरथचरित्र का उल्लेख भी आपने इस ग्रन्थमें किया है पर वह प्राप्त नहीं है, इस लिए उसकी भी खोज होना आवश्यक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसाकी जितनी सूक्ष्म व्याख्या एव आचरणकी तत्परता और कठोरता जैनधर्ममें पाई जाती है वैसी विश्वके किसी भी धर्मग्रन्थमें पाई नहीं जाती। जैन-धर्मकी अहिंसाकी मर्यादा मानवोंतक ही सीमित नहीं पर पशु-पक्षीके साथ पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल एवं वनस्पति जगतकी रक्षासे भी आगे बढ़ती है। किसी भी प्राणका विनाश तो हिंसा है ही, यहाँ तो उनको मानसिक, वाचिक, कायिक एवं कृतकारित अनुमोदित रूपसे भी तनिक-सा कष्ट पहुँचाना भी हिंसाके अन्तर्गत माना गया है। इतना ही नहीं, किसी भी प्राणीके विनाश एवं कष्ट न देनेपर भी यदि हमारे अन्तर्जगत-भावनामें भी किसीके प्रति कालुष्य है और प्रमादवश स्वगुणोंपर कर्म-आवरण आता है तो उसे भी आत्मगुणका विनाश मानकर हिंसाकी सज्ञा दी गई है। श्रीमद् देवचन्दजीने आध्यात्मगीतामें कहा है कि—

> आत्मगुणनो हणतो, हिंसक भावे थाय।
> आत्मधर्मनो रक्षक, भाव अहिंस कहाय॥
> आत्मगुणरक्षणा, तेह धर्म।
> स्वगुणविध्वंसना, तेह अधर्म॥

अहिंसाकी इतनी गम्भीर एवं मर्मस्पर्शी व्याख्या विश्वके किसी भी अन्य धर्ममें नहीं पाई जायगी। जैनधर्मके महान् उद्धारक भगवान महावीरने अहिंसा पालनके लिये मुनिधर्ममें कठिन-से-कठिन नियम बनाये, जिससे अधिक-से-अधिक अहिंसाकी प्रतिष्ठा जीवनमें हो सके।

भगवान महावीरके समय यज्ञादिमें महान् नरहिंसा व पशुहिंसा हो रही थी। धर्मके नामपर होने वाली इस जीवहत्याको धर्मके ठेकेदार स्वर्ग-प्राप्तिका साधन बतलाते थे। इस घोर पाखण्डका भगवान महावीर एवं बुद्धने सख्त विरोध किया। जिसके फलस्वरूप हजारों ब्राह्मणोंने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया और यज्ञ होने प्रायः बन्दसे हो गये। यज्ञके बाद पशु-हिंसाकी प्रवृत्ति देवीपूजामें पाई जाती है, जो हजारों वर्षोंसे अनर्थ मचा रही है। यज्ञ बन्द हो गये, पर इसने तो अभीतक पिंड नहीं छोड़ा। मेरी रायमें इसके बने रहनेका कारण यह है कि यज्ञमें पशु-हिंसा करना बड़ा खर्चीला अनुष्ठान था उसे तो राजा-महाराजा व सम्भ्रान्त लोग ही करवाते थे। अतः उसकी व्यापकता इतनी नहीं हुई, इसीसे थोड़े व्यक्तियोंके हृदय-परिवर्तन-द्वारा वह बन्द हो गया; पर देवीपूजामें एक-आध बकरे आदिकी बलि साधारण बात थी और इसलिये वह घर-घरमें प्रचारित हो गई। ऐहिक स्वार्थ ही इसमें मुख्य था। अतः इसको बन्द करनेके लिये सारी जनताका हृदय परिवर्तन होना आवश्यक था। धर्म-प्रचार सभ्य समाजमें ही अधिक प्रबल हो सका, अतः उन्हींके घरोंसे तो बलि बन्द हुई पर ग्रामीण जनता तथा साधारण बुद्धि वाले लोगोंमें यह चलती ही रही। इसको बन्द करानेके लिये बहुत बड़े आन्दोलनकी आवश्यकता थी। जैनाचार्योंने समय-समयपर इसे छुटानेके लिये विविध प्रयत्न किये, उन्हींमेंसे एक प्रयत्न यशोधरकी कथाका निर्माण भी कहा जा सकता है। यशोधरचरित्रमें प्रधान घटना यही है कि यशोधरने अनिच्छासे माताके दबावके कारण देवीके आगे साक्षात् मुर्गेका नहीं पर आटेके मुर्गेका वध किया, उसके फलस्वरूप उसे व उसकी माताको अनेक बार मयूर, कुत्ता, सेही, सर्प, मच्छ, मगर, बकरा, भैंसा आदि पशु-योनियोंमें उत्पन्न होना पड़ा एवं इन सब भवोंमें उनको निर्दयता-पूर्वक मारा गया।

इस कथाके प्रचारका उद्देश्य यह था कि जब अनिच्छासे आटेके मुर्गेको देवीके बलि देनेपर इतने दुःख उठाने पड़े तो जान-बूझकर हर्षसे जो साक्षात् जीव-हत्या करते हैं उनको नरकमें भी कहाँ ठिकाना होगा? अतः बलि-प्रथा दुर्गतिदाता होनेसे सर्वथा परिहार्य है।

पशु-बलिको दुर्गतिदायी सिद्ध करनेमें सहायक इस कथाको जैन विद्वानों-द्वारा अधिक अपनाना स्वाभाविक एवं उचित ही था। वास्तवमें इस कथासे हजारों आत्माओंको पशु-बलिसे छुटकारा दिलाने व दूर रखनेमें सहायता मिली होगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धार्मिक कथाओंमें मुख्यतः तीन प्रकारकी भावना काम कर रही प्रतीत होती है। कई कथायें वास्तविक चरित्रको उपस्थित करनेको, कई धार्मिक अनुष्ठानोंको अपनानेसे अनेक प्रकारके सुख प्राप्त करनेके प्रलोभन एवं रोचक ढङ्गसे उपस्थित करनेको, कई बुरे कामोंसे नरकादिके दुःख पानेको बताने वाली भयानक कथाओंकी रचना हुई है। यशोधरचरित तीसरे प्रकारकी कथा है। वर्तमान शिक्षासे वैज्ञानिक विचारधाराका विकास अधिक हो चुका है। अतः बहुतसे नवशिक्षितोंको इन कथाओंमें अतिरञ्जितपना एवं अस्वाभाविकता नजर आयेगी, पर कथाकारोंका उद्देश्य पवित्र था। उन्होंने अपने अनुकूल वातावरण उपस्थित करने व लोकरुचिको प्रभावित करनेके लिये ही मूलकथामें इधर-उधरकी बातें जोड़ भी दी हों तो वे क्षम्य ही समझी जानी चाहिएँ। ऐसी कई कथाओंको पढ़ते हुए जिस रूपमें वे वर्णित हैं, कर्म-सिद्धान्तसे, उनकी कई बातें मेल नहीं खातीं भी प्रतीत होती हैं; पर इस विषयपर विशेष विचार अधिकारी विद्वान ही कर सकते हैं।

मैं स्वयं इस बातका अनुभव करता हूँ कि प्रस्तुत लेखमें यशोधरके कथानकको लेकर विभिन्न ग्रन्थकारोंने उसमें क्या-क्या परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किया है, उसपर तुलनात्मक दृष्टिसे विवेचन किया जाना आवश्यक था। इसी प्रकार इसी ढङ्गकी अन्य भी जो कथायें प्राप्त हैं उनका पारस्परिक प्रभाव भी स्पष्ट किया जाता तो लेख बहुत उपयोगी होजाता, पर अभी उसके लिये मुझे समय एवं साधन प्राप्त नहीं हैं। अतः इस कार्यको किसी योग्य व्यक्तिके लिये छोड़कर यशोधरचरित्रोंकी सूची देकर ही लेखको समाप्त किया जारहा है। आशा है मेरे अधूरे कार्यको कोई विद्वान् शीघ्र ही पूर्ण करनेका प्रयत्न करेंगे।

यशोधरचरित्र सम्बन्धी दिगम्बर साहित्य—

संस्कृत

१ यशोधरचरित्र—प्रभंजन (वि० ८३५ पूर्व) मूडबिद्री भण्डार पत्र ४ श्लोक ३६। (प्रभंजनका उल्लेख दि० श्वे० दोनों विद्वानों ने किया है। अतः ये किस सम्प्रदाय के थे? ठीक नहीं कहा जासकता)।

२ यशस्तिलक चम्पू[१]—सोमदेवसूरि (शक सं० ८८१ चै० शु० १३ गङ्गधार में) रचित

३ यशोधरचरित—श्लो० २९६ (४ सर्ग) वादिराज (सं० १०८२) कृत।

४ यशोधरचरित्र—पद्मनाभ कायस्थ (सं० १४६१ के लगभग) निर्मित। [इसकी एक प्रति बीकानेर में कुँ० मोतीचन्दजी खजाँचीके संग्रहमें है ग्रन्थ-प्रशस्ति महत्वकी है, उसकी प्रतिलिपि हमारे संग्रहमें है पर वह अभी पासमें नहीं होनेसे विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सका]।

५ यशोधरचरित—वादिचन्द्रकृत सं० १६५७ अङ्कलेश्वर

६ यशोधरचरित्र—वासवसेन कृत

७ यशोधरचरित्र—पद्मनन्दिकृत

८ यशोधरचरित—सकलकीर्तिकृत

९ यशोधरचरित—(८ सर्ग) सोमकीर्ति (सं० १५३६ पो० व० ५ मेवाड़के गोढल्यामें) रचित। [इसकी प्रति बीकानेरके अनूपसंस्कृतलाइब्रेरीमें ३३ पत्रोंकी है]।

१० यशोधरचरित—जानकी (मूडबिद्री भं० पत्र १६ श्लोक ३८०) कृत।

११ यशोधरचरित—कल्याणकीर्ति सं० १४८८ (श्लोक १८५०) रचित। [अनेकान्त वर्ष १ में उल्लेख हैं]

१२ यशोधरचरित—ज्ञानकीर्ति सं० १६५९ (ग्रं० १४००)। वादिभूषण शि०

१३ यशोधरचरित—ब्र० नेमिदत्त (सं० १५७५)

१४ यशोधरचरित—पूर्णदेव

१५ यशोधरचरित—मल्लिसेन

१६ यशोधरचरित—श्रुतसागर (संभवतः टीका हो)

१७ यशोधरचरित—सर्वसेन

१८ यशोधरचरित—चारुकीर्ति

[१] इसपर श्रीदेवरचित पंजिका एवं श्रुतसागरकी टीका प्राप्त हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१९ यशोधरचरित—दयासुन्दर कायस्थ (संभवतः पद्मनाम हों)।

२० यशोधरचरित—देवेन्द्र (संभवतः पीछे उल्लिखित श्वे० रासका कर्ता हो ?)

२१ यशोधरचरित—सोमसेन

अपभ्रंश

१ जसहरचरिउ—A पुष्पदंत शाके ८९४ (अपूर्ण प्रति हमारे संग्रहमें उपलब्ध)
B गंधर्व पूरित ३ प्रकरण।

२ जसहरचरिउ—हरिषेण (अनुपलब्ध)।

३ जसहरचरिउ—अमरकीर्ति (अनुपलब्ध)।

हिन्दी

१ यशोधरचरित्र—गौरवदास सं० १५८१ फफौंद

२ यशोधरचरित्र—गरीबदास सं० १६०० अजमेर (प्रति हमारे संग्रहमें है)।

३ यशोधरचरित्र—खुशालचन्द्र काला सं० १७९१ सांगानेर।

४ यशोधरचरित्र—परिहानन्द

५ यशोधरचरित्र—भूरजी अग्रवाल।

६ यशोधरचरित्र—मनमोद अग्रवाल

७ यशोधरचरित्र—पन्नालाल चौधरी (२०वीं श०)

८ यशोधरचरित्र—नंदराम (१९०४ के लगभग)

९ यशोधरचरित्र वचनिका—लक्ष्मीदास।

गुजराती

१ यशोधररास—ब्र० जिनदास(सं०१५२० लगभग)

२ यशोधररास—सोमकीर्ति (सं० १६००, पंचायती मन्दिर, देहली)।

कन्नड

१ यशोधरचरित्र—चन्दप्प [चन्दन] वर्णी (श्लोक ३५००)।

आधुनिक हिन्दीमें वादिराजके चरित्रका हिन्दी-सार उदयलाल काशलीवाल लिखित जैन-साहित्य प्रसारक कार्यालय, बम्बईसे प्रकाशित होनेका उल्लेख पूर्व किया जाचुका है। माननीय प्रेमीजीकी सूचनानुसार सहारनपुरके जैनीलालजीने भी यशोधरचरित्र (भाषा) छपवाया था, पर अब नहीं मिलता। दि० जैन पुस्तकालय सूरत से गुजरातीमें १९ पेजका १८ प्रकरणात्मक यशोधरचरित प्रकाशित है।

श्वेताम्बर साहित्य—

संस्कृत

१ यशोधरचरित्र—देवसूरि [ग्र० ३५०] (सम्भव है दि० श्रीदेवकी पंजिका हो)।

२ यशोधरचरित्र—माणिक्यसूरि

३ यशोधरचरित्र—हेमकुँजर (सं० १६०७ पूर्व)

४ यशोधरचरित्र—पद्मसागर (उ. जैन सा. सं. इ.)

५ यशोधरचरित्र—ज्ञानदास लौंका (सं० १६२३)

६ यशोधरचरित्र—क्षमाकल्याण (सं० १९३९ जैसलमेर)

गुजराती-राजस्थानी

१ यशोधररास—(सं० १५७३) देवगिरि

२ यशोधररास—ज्ञान (सम्भव है उपर्युक्त ज्ञानदास वाला ही हो)।

३ यशोधररास—मनोहरदास (विजयगच्छ) (सं० १८७६ आ० व० ६ दशपुर)

४ यशोधररास—नयसुन्दर (सं० १६१८ पो० व० १ गु०)।

५ यशोधररास—जयनिधान (सं० १६४३)

६ यशोधररास—देवेन्द्र (सं० १६३८)

७ यशोधररास—उदयरत्न (सं० १७६७ पो० शु० ५ पाटण) (माणिक्यसूरिके चरित्रके आधारपर)

८ यशोधररास—जिनहर्ष (सं० १७४७ वै० व० ८ पाटण)।

९ यशोधररास—विमलकीर्ति (सं० १६६५ विजय दशमी अमृतसर)।

अन्यग्रन्थान्तर्गत

१ समराइच्चकहा—प्रा० हरिभद्रसूरि (८वीं)

२ समराइच्चकहा—संक्षेप, प्रद्युम्नसूरि (सं० १३२४)

३ समराइच्चकहा—क्षमाकल्याण, सुमति वर्द्धन

४ उपदेशप्रासाद—विजयलक्ष्मीसूरि (१९वीं श०)

जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहासमें हरिभद्रसूरिजी के स्वतन्त्र यशोधरचरित्रका भी उल्लेख है पर वह सम्भव कम ही है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आधुनिक हिन्दीमें विद्याकुमार सेठी व राजमल लोढा लिखित जैनसाहित्यसीरीज नम्बर १५ के रूपमें अजमेरसे प्रकाशित है।

उपर्युक्त सूचीमें ज्ञात यशोधरचरित्रोंका नाम निर्देश किया गया है। उनमेंसे कई संदिग्ध प्रतीत होते हैं पर उनके निर्णयके लिये सब ग्रन्थोंकी जाँच होना आवश्यक है और वह सम्भव कम है। अत: जितनी भी जानकारी थी यहाँ उपस्थित करदी गई है। इस सूचीके निर्माणमें निम्नोक्त ग्रन्थोंकी सहायता लीगई है:—

१ जैनरत्न कोष H. D. वेलणकर
२ जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास एवं जैनगुर्जर कविश्रो भाग २, ३
३ अनेकान्तमें प्रकाशित दि० भण्डारोंकी सूचियाँ।
४ प्रेमीजी सम्पादित "दि० जैनग्रंथ और ग्रंथकार"

तत्व चर्चा—

शंका-समाधान

[इस स्तम्भके नीचे ऐसे सभी शङ्काकार और समाधानकार महानुभावोंको निमन्त्रित किया जाता है, जो अपनी शङ्कायें भेजकर समाधान चाहते हैं अथवा शङ्काओं सहित समाधानोंको भी भेजनेके लिये प्रस्तुत हैं या किसी सैद्धान्तिक विषयपर ऊहापोह पूर्वक विचार करनेके लिये तैयार हैं। अनेकान्त इन सबका स्वागत करेगा। —सम्पादक]

८ शङ्का—अरिहंत और अरहंत इन दोनों पदों में कौन पद शुद्ध है और कौन अशुद्ध ?

८ समाधान—दोनों पद शुद्ध हैं। आर्ष-ग्रंथोंमें दोनों पदोंका व्युत्पत्तिपूर्वक अर्थ दिया गया है और दोनोंको शुद्ध स्वीकार किया गया है। श्रीषट्खण्डागमकी धवला टीकाकी पहली पुस्तकमें आचार्य वीरसेनस्वामीने देवतानमस्कारसूत्र (णमोकारमंत्र) का अर्थ देते हुए अरिहंत और अरहंत दोनोंका व्युत्पत्ति-अर्थ दिया है और लिखा है कि अरिका अर्थ मोहशत्रु है उसको जो हनन (नाश) करते हैं उन्हें 'अरिहंत' कहते हैं। अथवा अरि नाम ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिकर्मोंका है उनको जो हनन (नाश) करते हैं उन्हें अरिहंत कहते हैं। उक्त कर्मोंके नाश होजानेपर शेष अघाति कर्म भी भ्रष्ट (सड़े) बीजके समान निःशक्तिक होजाते हैं और इस तरह समस्त कर्मरूप अरिको नाश करनेसे 'अरिहंत' ऐसी संज्ञा प्राप्त होती है। और अतिशय पूजाके अर्हयोग्य होनेसे उन्हें अरहंत या अर्हन्त ऐसी भी पदवी प्राप्त होती है, क्यों कि जन्मकल्याणादि अवसरोंपर इन्द्रादिकों द्वारा वे पूजे जाते हैं। अत: अरिहंत और अरहंत दोनों शुद्ध हैं। फिर भी णमोकारमन्त्रके स्मरणमें 'अरिहंत' शब्द का उच्चारण ही अधिक उपयुक्त है, क्योंकि षट्खण्डागममें मूल पाठ यही उपलब्ध होता है और सर्वप्रथम व्याख्या भी इसी पाठकी पाई जाती है। इसके सिवाय जिन, जिनेन्द्र, वीतराग जैसे शब्दोंका भी यही पाठ सीधा बोधक है। भद्रबाहुकृत आवश्यक निर्युक्तिमें भी दोनों शब्दोंका व्युत्पत्ति अर्थ देते हुए प्रथमत: 'अरिहंत' शब्दकी ही व्याख्या की गई है। यथा—

अट्ठविहं पि य कम्मं अरिभूयं होइ सव्वजीवाणं।
त कम्ममरिं हंता अरिहंता तेण वुच्चंति ॥६२०॥
अरिहंति वंदण-णमंसणाइं अरिहंति पूयसक्कार।
सिद्धिगमणं च अरिहा अरहंता तेण वुच्चंति ॥६२१॥

९ शङ्का—कहा जाता है कि भगवान आदिनाथ से मरीचि (भरतपुत्र)ने जब यह सुना कि उसे अन्तिम तीर्थंकर होना है तो उसको अभिमान आगया, जिस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से वह स्वच्छन्द प्रवृत्ति करके नाना कुयोनियोंमें गया। क्या उसके इस अभिमानका उल्लेख प्राचीन शास्त्रोंमें आया है?

९ समाधान—हाँ, आया है। जिनसेनाचार्य कृत आदिपुराणके अतिरिक्त भद्रबाहुकृत आवश्यक निर्युक्तिमें भी मरीचिके अभिमानका उल्लेख मिलता है और वह निम्न प्रकार है—

तव्वयणं सोऊणं तिवइं आप्फोडिऊण तिक्खुत्तो ।
अब्भहियजायहरिसो तत्थ मरीई इमं भणई ॥४३०॥
जइ वासुदेवु पढमो मूआइ विदेहि चक्कवट्टित्तं ।
चरमो तित्थयराणं होऊं अलं इत्तिअं मज्झ ॥४३१॥

१० शङ्का—पूजा और अर्चामें क्या भेद है? क्या दोनों एक हैं?

१० समाधान—यद्यपि सामान्यतः दोनोंमें कोई भेद नहीं है, पर्याय शब्दोंके रूपमें दोनोंका प्रयोग रूढ़ है तथापि दोनोंमें कुछ सूक्ष्म भेद जरूर है। इस भेदको श्रीवीरसेनस्वामीने षट्खण्डागमके 'बन्ध-स्वामित्व' नामके दूसरे खण्डकी धवला टीका पुस्तक आठमें इस प्रकार बतलाया है—

"चरु-बलि-पुप्फ-फल-गन्ध-धूव-दीवादीहि सगभत्तिपयासो अच्चणा णाम। एदाहि सह अइंदधय-कप्परुक्ख-महामह-सव्वदोभद्दादिमहिमाविहाणं पूजा णाम।" पृ० ९२।

अर्थात् चरु, बलि (अक्षत), पुष्प, फल, गन्ध, धूप और दीप इत्यादिसे अपनी भक्ति प्रकाशित करना अर्चना (अर्चा) है और इन पदार्थोंके साथ ऐन्द्रध्वज कल्पवृक्ष, महामह, सर्वतोभद्र आदि महिमा (धर्म-प्रभावना)का करना पूजा है।

तात्पर्य यह कि फलादि द्रव्योंको चढ़ा (स्वाहा-पूर्वक समर्पण कर संक्षेपमें लघु भक्तिको प्रकट करना अर्चा है और उक्त द्रव्यों सहित समारोह पूर्वक विशाल भक्तिको प्रकट करना पूजा है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि इन्द्रध्वज आदि पूजामहोत्सवोंका विधान वीरसेनस्वामीसे बहुत पहलेसे विहित है और जैन शासनकी प्रभावना में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

११ शङ्का—निम्न पद्य किस ग्रन्थका मूल पद्य है? उसका मूल स्थान बतलायें?

सुखमाल्हादनाकारं विज्ञानं मेयबोधनम् ।
शक्तिः क्रियानुमेया स्याद्यूनः कान्तासमागमे ॥

११ समाधान—उक्त पद्य अनेक ग्रन्थोंसे उद्धृत पाया जाता है। आचार्य विद्यानन्दने अष्ट-सहस्री (पृ० ७८) में इसे '<u>इतिवचनात्</u>' शब्दोंके साथ दिया है। आचार्य अभयदेवने सन्मतिसूत्र-टीका (पृ० ४७८)में इस पद्यको उद्धृत करते हुए लिखा है—

"नच सौगतमतमेतत् न जैनमतमिति वक्तव्यम्, 'सहभाविनो गुणाः क्रमभाविनः पर्यायाः' [ ] इति जैनैरभिधानात्। तथा च सहभावित्व गुणानां प्रतिपादयता दृष्टान्तार्थमुक्तम्—"

इसके बाद उक्त पद्य दिया है। सिद्धिविनिश्चय टीकाकार बड़े अनन्तवीर्यने इसी पद्यका निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

"कथमन्यथा न्यायविनिश्चये 'सहभुवो गुणाः' इत्यस्य 'सुखमाल्हादनाकारं ...' इति निदर्शनं स्यात्।"—(टी०लि० पृ० ७६।)

अभयदेव और अनन्तवीर्यके इन उल्लेखोंसे प्रतीत होता है कि गुणोंके सहभावीपना प्रतिपादन करनेके लिये दृष्टान्तके तौरपर उसे अकलङ्कदेवने न्यायविनिश्चयमें कहा है। परन्तु न्यायविनिश्चय मूल में यह पद्य उपलब्ध नहीं होता। हो सकता है उसकी स्वोपज्ञवृत्तिमें उसे कहा हो। मूलमें तो सिर्फ १११वीं कारिकामें इतना ही कहा है कि '<u>गुणपर्ययवद्द्रव्यं ते सहक्रमवृत्तयः</u>'। यदि वस्तुतः यह पद्य न्याय-विनिश्चयवृत्तिमें कहा है तो यह प्रश्न उठता है कि वहाँ वृत्तिकारने उसे उद्धृत किया है या स्वयं रचकर उपस्थित किया है? यदि उद्धृत किया है तो मालूम होता है कि वह अकलङ्कदेवसे भी प्राचीन है। और यदि स्वयं रचा है तो उसे उनके न्यायविनिश्चयकी स्वोपज्ञवृत्तिका समझना चाहिए। वादिराजसूरिने न्यायविनिश्चयविवरण (प० २४० पूर्वा०) में '<u>यथोक्तं स्याद्वादमहार्णवे</u>' शब्दोंके उल्लेख-पूर्वक उक्त पद्यको प्रस्तुत किया है, जिससे वह '<u>स्याद्वादमहार्णव</u>' नामक किसी जैन दार्शनिक ग्रन्थका जाना जाता है। यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है और इससे यह नहीं कहा जासकता कि इसके रचयिता कौन आचार्य हैं। हो सकता है कि अकलङ्कदेवने भी इसी स्याद्वाद-महार्णवपरसे उक्त पद्य उदाहरणके बतौर न्यायविनिश्चयकी स्वोपज्ञवृत्तिमें, जो आज अनुपलब्ध है, उल्लेखित किया हो और इससे प्रकट है कि यह पद्य काफी प्रसिद्ध और पुराना है।

१२ शङ्का—आधुनिक कितने ही विद्वान यह कहते हुए पाये जाते हैं कि प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्टने अपने मीमांसा-श्लोकवार्त्तिककी निम्न कारिकाओंको समन्तभद्रस्वामीकी आप्तमीमांसागत 'घटमौलिसुवर्णार्थी' आदि कारिकाके आधारपर रचा है और इसलिये समन्तभद्रस्वामी कुमारिलभट्टसे बहुत पूर्ववर्ती विद्वान् हैं। क्या उनके इस कथनको पुष्ट करने वाला कोई प्राचीन पुष्ट प्रमाण भी है? कुमारिलकी कारिकाएँ ये हैं—

वर्द्धमानकभंगेन रुचकः क्रियते यदा।
तदा पूर्वार्थिनः शोकः प्रीतिश्चाप्युत्तरार्थिनः॥
हेमार्थिनस्तु माध्यस्थ्यं तस्माद्वस्तु त्रयात्मकम्।

१२ समाधान—उक्त विद्वानोंके कथनको पुष्ट करने वाला प्राचीन प्रमाण भी मिलता है। ई० सन् १०२५ के प्रख्यात विद्वान् आचार्य वादिराजसूरिने अपने न्यायविनिश्चयविवरण (लि० प० २४५) में एक असन्दिग्ध और स्पष्ट उल्लेख किया है और जो निम्न प्रकार है—

"उक्तं स्वामिसमन्तभद्रैस्तदुपजीविना भट्टेनापि—
घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्॥
वर्द्धमानकभंगेन रुचकः क्रियते यदा।
तदा पूर्वार्थिनः शोकः प्रीतिश्चाप्युत्तरार्थिनः॥
हेमार्थिनस्तु माध्यस्थ्यं तस्माद्वस्तु त्रयात्मकम्।इति च॥"

इस उल्लेखमें वादिराजने जो 'तदुपजीविना' पदका प्रयोग किया है उससे स्पष्ट है कि आजसे नौ सौ वर्ष पूर्व भी कुमारिलको समन्तभद्रस्वामीका उक्त विषयमें अनुगामी अथवा अनुसर्ता माना जाता था। जो विद्वान् समन्तभद्रस्वामीको कुमारिल और उसके समालोचक धर्मकीर्तिके उत्तरवर्ती बतलाते हैं उन्हें वादिराजका यह उल्लेख अभूतपूर्व और प्रामाणिक समाधान उपस्थित करता है।

वीरसेवामन्दिर
२७ फरवरी १९४८

—दरबारीलाल कोठिया

स्मृतिकी रेखाएं—

भिक्षुक मनोवृत्ति

(ले० अयोध्या प्रसाद गोयलीय)

बहुधा लोगोंके जीवनमें ऐसे अवसर आते हैं कि दिनभर भूखे-प्यासे रहनेसे पेट अन्तड़ियोंसे लग जाता है, जीभ तालूसे जालगी है, ओठोंपर पपड़ियाँ जम गई हैं और चलते-चलते पाँव मूसल होगये हैं। न पासमें एक धेला है जो चने चाबकर ही ठण्डा पानी पिया जाय, न मंजिले मकसूद ही नजर आती है। पासमें पैसे न होनेकी वजह मुफलिसी ही नहीं होती, आकस्मिक घटनाएँ भी होती हैं। कभी जेब कट जाती है, कभी घरसे लेकर न चले और साथियों ने रास्तेसे ही पकड़ लिया और समझा कि अभी वापिस आये जाते हैं, मगर रास्तेमें कार फेल होगई या ताँगा पलट गया पैदल चलनेके सिवा कोई चारा नहीं। कभी रेल्वे टिकिटके लिये १-२ पैसेकी कमी रह गई है। परदेशमे किससे माँगे, कोई जान पहचानका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी तो दिखाई नहीं देता, कि इस मुसीबतसे निजात मिले। और दिखाई दिया भी तो माँगनेकी हिम्मत न हुई; ओठ काँपकर रह गये। घरमें बच्चा बीमार पड़ा है, उसी रोज वेतन मिलने वाला है, मगर घरमें डाक्टरको बुलानेके लिये रुपये फीसको तो कुजा, आफिस जानेके लिये इक्केके लिये दो पैसे भी नहीं हैं। और मनमें यह सोच ही रहे हैं कि चलो बच्चेको ही हस्पताल गोदमें लेचला जाये, ऐसे ही नाजुक मौकेपर कोई साहब आते हैं। शक्लोशबाहत-से अच्छे खासे ज़ीविक़ार और भले मालूम देते हैं। हाथमें ४-५ रुपयेकी रेज़गारी भी लिये हुए हैं। कुम्भ-स्नानको जाना है, एक-दो रुपयेकी जो कमी रह गई है, उसे पूरी करने चले आये हैं और इनकी धज देखिये—नाज मुद्दतसे छोड़ रक्खा है, सिर्फ फल-दूधपर गुज़र फर्माते हैं, ऐसे संयमीकी सहायता करना आवश्यक है। भांजीके भातमें २०००) रु० की कसर रह गई है, ऐसे कारे सवाबमें मदद करना अख़लाक़ी फर्ज़ है। अफीम खानेको पैसे नहीं रहे हैं, अफीम न मिली तो बिचारा जम्हायाँ लेते-लेते मर जायगा, इन्सानी जान बचाना निहायत ज़रूरी है। ऐसे दुखद प्रसङ्गोंपर बड़ी विचित्र परिस्थिति होती है। ख़ासकर उस अवसरपर जबकि आप खुद सही मायनोंमें इम्दादके मुस्तहक़ हैं, मगर अपनी वजहदारीकी वजहसे आप किसीपर भी यह राज़ जाहिर नहीं करना चाहते और तभी कोई आपके जाने पहचाने साहब—किसी जल्सेके लिये, चौबेको भरपेट लाडू खिलानेके लिये, किसी साधुके मन्दिर का कुआ बनवानेकी हठ करनेके लिये, चिड़ीमारके चंगुलसे तोते छुड़ानेके लिये, मुहल्लेमें साँग करनेके लिये, कलकत्ते-बम्बईमें चलने वाली मज़दूर हड़तालके लिये, देवीका परसाद बाँटनेके लिये, क़साईके हाथसे लङ्गड़ी गाय छुड़ानेके लिये—चन्दा माँगने आजाते हैं। तब कैसी दयनीय परिस्थिति होजाती है, ना करनेकी हिम्मत नहीं; देनेको कानी कौड़ी नहीं। कभी दिल चाहता है दीवारसे टकराकर अपना सर फोड़लें, कभी जी चाहता है इन माँगनेवालोंपर टूट पड़ें और जो ये लाये हैं, उसे छीनकर अपना काम चलाएँ। मगर कुछ नहीं बनता और एक निरीह खुदग़रज़, अहङ्कारी, रूक्षस्वभावी न जाने क्या-क्या लोगोंकी नज़रोंमें बनकर रहजाते हैं। कुछ आप बीती अर्ज़ करता हूं:—

२

सन् ३२की दिवाली आई और चली गई, न हमारे घरमें चराग़ न मिठाई आई। इस बातसे हमारे चेहरेपर शिकन आई न दिलमें कोई मलाल, बल्कि हक़ीक़ी मायनोंमें हमें अपनी इस बेबसीपर नाज़ था। क्योंकि यह मुसीबत देवकी तरफ़से नहीं हमने खुद ही बुलाई थी। दीवालीसे दो-तीन रोज बाद माँने कहा—बेटा! मुझे तुझसे कहना याद नहीं रहा, एक आदमी १०-१२ चक्कर लगा चुका है, न नाम बताता है न काम, न तेरे मिलनेके वक्तपर आता है, यूं कई चक्कर काट चुका।" माँ अपनी बात पूरी भी न कर पाई थी कि बोली—"देख, वही शायद फिर आवाज दे रहा है।"

बाहर आकर उनका परिचय पूछूँ कि वे स्वयं ही बोले—

"आप ही गोयलीयजी हैं।"

"जी, मुझ खाकसारको गोयलीय कहते हैं।"

"वाह, साहब आप भी खूब हैं; पचासों चक्कर लगा डाले तब आप मिले हैं।"

मैं हैरान कि ख़ामाखाँ झाड़ पिलाने वाले यह साहब आख़िर हैं कौन? पुलिस वाले यह हो नहीं सकते, उनकी इतनी हिम्मत भी नहीं कि इस तरह पेश आएँ, कोई कर्ज़ माँगने वाला भी नहीं होसकता क्योंकि यहाँ यह आलम रहा है कि—

घरमें भूका पड़ रहे दस फाके होजाएँ।
तुलसी भैया बन्धुके कभी न माँगन जाएँ॥

जब बाबा तुलसीभैया बन्धुसे माँगना वर्जित कर गये हैं तब ग़ैरोंसे उधार माँगनेकी तो मैं बेवकूफ़ी करता ही क्यों? फिर भी मैंने बड़ी आजिज़ीसे न मिलनेका अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए उनसे ग़रीब-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आनेपर तशरीफ आवरीका सबब पूछा तो मालूम हुआ कि मेरे साथ जो जेलमें एक वालिण्टियर १-२ माह रहे थे, ये उनके भाई हैं। उनकी तन्दुरुस्ती ठीक न होनेकी वजहसे वे शिमले जाना चाहते हैं। लिहाजा मुझे उनके पहाड़ी अखराजातके माकूल इन्तज़ामात कर देने चाहियें।

मैं तो सुनकर सन्न रह गया। पहले तो यही बड़ी मुश्किलसे समझमें आया कि ये आखिर ज़िक्र किन साहबका कर रहे हैं। यह जान पहचान ठीक इसी तरह की थी जैसे कोई कहार देहलीसे डोली खरीदकर ले जाएँ और लोगोंसे कहें कि पं० नेहरू रिश्तेमें साढू होते हैं। और कुरेदकर पूछनेपर बताएँ कि जिस शहरसे पण्डितजी कमला नेहरूका डोला लाये थे, वहीं से हम भी डोली लाये हैं।

मुझे उसकी इस दीदादिलेरी, बेतकल्लुफी, भीखके टूक और बाज़ारमें डकार वाली शानपर ताव तो बहुत आया, मगर घरपर आया जानकर बल खाकर रह गया और निहायत आजिज़ीसे मजबूरी ज़ाहिर की, न चाहते हुए भी मुफ़लिसीकी रेखा खींची। मगर उसको यक़ीन न आया। "लोग बड़े खुदग़रज़ हैं, खुद गुलछर्रे उड़ाते हैं, मगर दूसरों को छटपटाते देखकर भी नहीं सिहरते।" इसी तरहके भाव व्यक्त करते हुए वे चले गये और मैं अपनी इस बेबसीपर नादिम गढ़ा-सा रह गया कि एक वो हैं जो स्वास्थ्य सुधारने पहाड़ जारहे हैं और एक हम हैं कि दम उखाड़ने वाली खाँसीके लिये मुलैठी-सत नहीं जुटा पारहे हैं।

— ३ —

कुछ घटनाएं विरोधी भी सुनिये–

१९३३ या ३४ की बात है। जमनामें बाढ़ आजानेसे निकटवर्ती गाँव बड़ी विपदामें आगये थे। उन्हें भोजन, वस्त्र, दवा आदिकी अविलम्ब आवश्यकता थी। दिल्ली वाले प्राणपणसे सहायता पहुँचा रहे थे। हमारे इलाक़ेसे भी हज़ारों रुपये एकत्र हुए। हम एक कारमें आवश्यक सामान रखकर नहरके रास्तेमें पड़ने वाले गाँवमें गये। वहाँ दवाएँ, वस्त्र आदि बाँटते हुए एक ऐसे गाँवमें गये जहाँ वर्षासे बहुत हानि नहीं हुई थी और बादमें मालूम हुआ कि यह ब्राह्मणोंका गाँव था। वहाँ गाँव वालोंकी सलाहसे तय हुआ कि पूरे गाँव भरके लिये कमसे कम एक सप्ताहके भोजनका प्रबन्ध फौरन कर देना चाहिये और जबतक स्थिति पूर्व जैसी न होजाय बराबर साप्ताहिक सहायता आती रहनी चाहिये। जन-लेखा का हिसाब लगाया गया तो ८० मन गेहूं की हक़्क़े बैठता था। गाड़ी यहाँ आकर अटकी कि ८० मन गेहूँ दिल्लीसे क्योंकर लाया जाय? कारके आने-जाने को ही बमुश्किल नहर विभागसे आज्ञा मिली है। इस खतरेमें ट्रक या लॉरी तो किसी हालतमें भी नहीं आसकती।

हम लोगोंको चिन्तामें पड़े देख गाँव वाले बोले "दिल्लीसे गेहूँ लानेकी क्या ज़रूरत है। हमारे यहाँ सबके पास गेहूँ भरा पड़ा है, दाम देकर चाहे जितना खरीद लो।"

हमारी हैरानीकी हद न रही, हमने कहा—अरे भई जब तुम्हारे पास गल्ला भरा पड़ा है तब तुम नाहक हमसे लेना चाहते हो?

वे बोले—"वाह साहब, आप जब इतनी दूर चलकर देने आये हैं तब हम क्यों न लें, आप भी अपने मनमें क्या कहेंगे कि ब्राह्मण होकर दान लेनेसे इन्कार किया।" हमने अपनी हँसी और आवेशको रोककर कहा—"भई हम इस वक्त ख़ैरात करने नहीं आये, अपने भाइयोंकी मदद करने आये हैं। मुसीबतमें इन्सान ही इन्सानके काम आता है। हम दे रहे हैं इसीसे दाता नहीं और जो ज़रूरतमन्द ले रहे हैं, वह माँगते नहीं। यह तो सब मिलकर मुसीबतमें एक दूसरेका हाथ बटा रहे हैं। इसीलिये गाँवमें जो सचमुच इमदादके योग्य हो उसे बुलादो, जो हमसे उसकी सहायता बन सकेगी करेंगे।"

गाँव वालोंने जिस बुढ़ियाका नाम बताया, उसने मिन्नतें करनेपर भी कुछ नहीं लिया। तब वे गाँव वाले स्वयं ही बोले—आप नाहक़ परेशान होते हैं। इमदाद लेगा तो सारा गाँव लेगा, वर्ना कोई न लेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अगर आप हमें न देकर सिर्फ १-२ को देकर चले जायेंगे तो सारा गाँव इन्हें हलका समझेगा, ताना मारेगा, इसी डरसे यह लोग नहीं लेते हैं न लेंगे।

बड़ा जी खराब हुआ, जिन्हें सचमुच सहायताकी जरूरत थी, उन्हें भी सहायता न दी जासकी। लाचार कारमें बैठकर नहरकी पटरी-पटरी दिल्लीकी ओर वापिस जारहे थे कि नहरके किनारे कुछ लोग औरतों बच्चों समेत दिखाई दिये तो कार रुकवा ली। पूछनेपर मालूम हुआ कि गाँवमें पानी आजानेसे यह लोग यहाँ आगये हैं और ज्यादातर किसान जाट हैं।

हमने जब इमदाद देनेकी बात उठाई तो वे लोग बातको टाल गये, दुबारा कहा तो ऐसे चुप होगये जैसे कुछ सुना ही नहीं। फिर तनिक ज़ोर देकर कहा तो बोले—आपकी मेहरबानी, हमें किसी चीज़की दरकार नहीं, भगवानका दिया सब कुछ है।"

उस गाँवकी भिक्षुक मनोवृत्ति देखकर हम जो गाँव वालोंके प्रति अपनी राय क़ायम कर चुके थे, वह उड़ती नज़र आई तो हमने अपनी दानवीरताके बड़प्पनके स्वरमें तनिक मधुरता घोलते हुए कहा—"सङ्कोचकी कोई बात नहीं, तुम्हारा जब सब उजड़ गया है, तो यह सामान लेनेमें उज्र किस बातका? यह तो लाये ही आप लोगोंके लिये हैं।"

हमारी बात उन्हें अच्छी नहीं लगी, शिष्टाचारके नाते उन्होंने कहा तो शायद कुछ नहीं, फिर भी उनके मनोभाव हमसे छिपे नहीं रहे। उन्होंने मौन रहकर ही हमपर प्रकट कर दिया कि जो स्वयं अन्नदाता हैं, वे हाथ क्या पसारेंगे? फिर भी हमारे मन रखनेको उनमेंसे एक बूढ़ा बोला—"लाला—हम सब बड़े मौजमें हैं, अगर कुछ देनेकी समाई है तो उस टीलेपर हमारे गाँवका फ़क़ीर पड़ा है, उसे जो देना चाहो दे आओ। हम सब अपनी-अपनी गुज़र-बसर कर लेंगे। उसकी इमदाद हमारे बसकी नहीं।"

आख़िर उस फ़क़ीरको ही आटा-वस्त्र देकर अपनी दानशीलताकी खाज मिटाई गई। कारमें सब साथी मुँह लटकाये दिल्ली वापिस जारहे थे, हम बड़े या ये किसान, शायद इसी समस्याको सब सुलझा रहे थे।

— ४ —

डालमियाँनगरमें सहारनपुरके चौ० कुलवन्त-राय जैन रहते थे। ५०-५५ वर्षकी आयु होगी। ज़ीशऊर, खुशपोश और बड़ी वजह क़तहके बुजुर्ग थे। घरके आसूदा थे, मगर व्यापारमें घाटा आजानेसे यहाँ सर्विस करके दिन गुज़ार रहे थे। मामूली वेतन और मामूली पोस्टपर काम करते थे। मेरे पास अक्सर आया करते और बड़ी तजरुबेकी बातें सुनाया करते थे। निहायत खुश अख़लाक़ बामज़ाक, नेकचलन और क़ायदा करीनेके इन्सान थे। उनकी सुहबतमें जितना भी वक्त सर्फ़ हुआ, पुरलुत्फ़ रहा। हर इन्सानको घरेलू परेशानियाँ और नौकरी सम्बन्धी असुविधाएँ होती हैं, मगर २-३ सालके अर्सेमें एकबार भी ज़बानपर न लाये। मिल क्षेत्रोंमें जहाँ बैठे बिठाये, लोगोंको उत्पात सूझते रहते हैं। इन्क्रीमेण्ट, (वार्षिक तरक़्क़ी) बोनस (नौकरीके अतिरिक्त वार्षिक भत्ता) डेज़िगनेशन (पद) और ऑफिसर्सकी शिकायतें, किन्क़लाब, मुर्दाबाद और हाथ-हाथके नारोंसे अच्छे अच्छोंके आसन और मन हिलजाते हैं। तब भी उनके चेहरेपर न शिकन दिखाई दी, न ज़बानपर हर्फ़शिकायत।

उनका इकलौता लड़का रुड़की कॉलिजमें इञ्जीनियरिङ्ग पढ़ रहा था। शायद ८०) रु० मासिक भेजने पड़ते थे। मैं जानता था यह उनके बूतेके बाहर है, उन्हें बमुश्किल इतना कुल वेतन मिलता था। अतः मैं समझता था कि या तो धीरे-धीरे बचे खुचे ज़ेवर सर्फ़ होरहे हैं या सरपर ऋण चढ़ रहा है। पूछनेकी हिम्मत भी न होती थी, पूछूँ भी किस मुँहसे?

आख़िर एक रोज़ जी कड़ा करके मैंने रास्तेमें उनसे साहू साहबसे छात्रवृत्ति लेनेके लिये कह ही दिया। सुनकर शुक्रिया अदा करके मन्दिरजी चले

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गये। दूसरे रोज घरपर तशरीफ लाये और फर्माया—"गोयलीयजी, आप मेरे बड़े शुभचिन्तक हैं, यह मैं जानता हूं। आपने मेरा दिल दुखानेको नहीं बल्कि नेकनीयतीसे ही मुझे यह सलाह दी है। आपकी बात टालनेकी हिम्मत न होनेकी वजहसे, मैं उस वक्त स्वीकारता देकर चला गया। मगर फिर घर जाकर सोचा तो, बात मनमें बैठी नहीं। एक साल रह गया जैसे भी होगा निकल जायगा। इस बुढ़ापे में क्यों जरासी बातपर खानदानको दाग़ लगाया? भला लड़का ही अपने मनमें क्या सोचेगा, भई गोयलीयजी मैं छात्रवृत्ति लेकर अपने बच्चेका दिल छोटा हरगिज नहीं करूँगा।"

चौधरी साहब इतना स्वाभिमानका उत्तर देगें, अगर मुझे यह आगाह भी होता तो मैं यह ज़िक्र तक न छेड़ता। मगर अब तो तीर कमानसे निकल चुका था, निशानेपर न लगे तो तीरन्दाजकी खूबी क्या? मैं तनिक अधिकारपूर्वक बोला—चौधरी साहब, आपका साहबजादा फर्स्टक्लास फर्स्ट आया है, ऐसे होनहारको तो वजीफा लेनेका पूरा हक़ है। इसमें सङ्कोच और एहसानकी क्या बात है? यह तो उसे बतौर इनाम मिलेगा।

मैंने समझा वार भरपूर बैठा और चौधरी साहब अब सीधे खड़े नहीं रह सकते। मगर नहीं, उन्होंने वार भी बड़ी खूबीसे काटा और मुझे पटखना भी ऐसा दिया कि चोट भी न लगे और हमलावरकी तारीफ़ करनेको जी भी चाहे।

फर्माया—गोयलीयजी, आपका फर्माना बजा है, मगर बेअदबी मुआफ़, यह होनहार लड़कोंको वजीफेके तौरपर मिलता है तो ग़रीब-अमीर सब लड़कोंको बिना माँगे क्यों नहीं मिलता, सिर्फ़ ग़रीब लड़कोंको ही क्यों मिलता है।"

मेरे पास इसका जवाब नहीं था, क्योंकि मैं जानता था कि असहाय विद्यार्थी भी उच्चसे उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें, आर्थिक अभावके कारण उनका विकास न रुक जाय, इसी सद्भावनासे प्रेरित होकर श्रीमान् साहु साहबने छात्रवृत्ति जारी की हैं।

चौधरी साहब आज संसारमें नहीं हैं, मगर उनकी वजहदारी याद आती रहती है।

१८ फरवरी १९४८

सम्पादकीय

१ मगरमच्छके आंसू—

महात्माजीके निधनसे सारा भारत शोकमग्न हो गया है। भारतीयोंको ही नहीं विदेशियोंके हृदयको भी काफी आघात पहुँचा है। उनके धार्मिक और राजनैतिक सिद्धान्तोंसे मतभेद रखने वाले भी व्यथित हुए हैं। महात्माजीका व्यक्तित्व ही ऐसा था कि विरोधी भी उनके लोकोत्तर गुणोंके क़ायल थे।

ऐसे लोग भी जो जीवनभर महात्माजीके सिद्धान्तोंका विरोध करते रहे, उनके चलाये स्वराज्य-संग्राममें विपक्षीकी ओरसे लड़ते रहे। निहत्थोंपर गोलियाँ चलवाते रहे। स्वराज्य-सैनिकोंको गिरफ़ार कराते रहे, अदालतोंमें झूठी गवाहियाँ देकर सजा दिलाते रहे। खद्दर पहनना तो दरकिनार विलायती कपड़ा पहनते रहे—बेचते रहे। पतितोद्धार तो कुजा अपने सजातियोंको भी मन्दिर-प्रवेशसे रोकते रहे। हिन्दू-मुस्लिम राज्यकी क्यां चली अपने समाजको कुरुक्षेत्रका मैदान बनाये रहे—आज महात्माजीके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पण कर रहे हैं, तार भेज रहे हैं, शोक-सभाओंमें भाषण देरहे हैं, लेख लिख रहे हैं, जिन्हें स्वयं लिखना नहीं आता, वे दूसरोंसे लिखवा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहे हैं, पत्रोंके विशेषांक निकाल रहे हैं, स्मारक बनवा रहे हैं। मानों सारा भारत गांधीवादी होगया है। काश लोगोंने अपनी भूल समझी होती, और सचमुच हृदय परिवर्तन किया होता ! जो संतप्त होनेका अभिनय कर रहे हैं काश सचमुच संतप्त हुए होते तो महात्माजीका मरण भी भारतके लिये वरदान हुआ होता !

ऐसे छद्मस्थ लोगोंके आँसू उस मगरके समान है जो धोखेमें डालनेको तो आँखोंमें आँसू भरे रखता है, पर अपनी करनीसे लहमेभरको भी बाज नहीं आता। सन् ३२ या ३३में महात्माजी जब पहली बार दिल्लीकी हरिजन कौलोनीमें ठहरे तो सन्ध्याकालीन प्रार्थनाके समय काफी जन-समूह एकत्र हुआ। जिनमें विलायती वस्त्रोंसे सुसज्जित बनी-ठनी महिलाएँ और सूटबूट धारी युवक ही ज्यादातर थे। पाँव छूनेके लिये अग्रसर होती हुई भीड़को देखकर महात्माजी तनिक ऊँचे स्वरमें बोले—"तुम लोग मेरे पाँव छूनेके बजाय मेरे मुँहपर थूक देते तो अच्छा था। मैं जिन सिद्धान्तोंके प्रसारके लिये मारा-मारा फिर रहा हूँ, जिस स्वराज्य-संग्राममें मैं लिप्त हूँ, उसमें तो तुम लोग मेरी तनिक भी सहायता नहीं करते ? उल्टा जिन विदेशी वस्त्रोंकी मैं होली जलवाता फिर रहा हूँ, उन्हें ही पहनकर तुम मेरे सामने आते हो ? मेरी एक भी बात न मानकर केवल दर्शन करनेमें ही जीवनकी सार्थकता समझते हो।"

सचमुच उस नेतासे बड़ा अभागा दुनियामें और कौन होसकता है, जिसका जय-जयकार तो सारा देश करे, उसे ईश्वर तुल्य पूजे किन्तु आदेशोंका पालन मुट्ठीभर ही करते हों।

ऐसे ही छद्मस्थ अनुयायियोंके कारण नेता धोखा खाजाते हैं। स्वयं महात्माजी भी कई बार ऐसे धोखेके शिकार हुए। भारतमें सर्वत्र इस तरहकी श्रद्धा भक्तिसे ओत-प्रोत भीड़को देखकर उन्हें अपने अनुयायियोंकी इस बहुसंख्याका गलत अन्दाज होजाता था। वे समझ लेते थे, मेरे इशारेपर समूचा भारत तैयार बैठा है किन्तु युद्ध छेड़नेपर ३५ करोड़के देशमें १ लाखसे अधिक सैनिक कभी नहीं हुए।

आश्चर्य तो यह देखकर होता है कि हमारी समाजमें जिन भले मानुसोंने ब्र० शीतलप्रसादका बहिष्कार इसलिये किया कि वे अन्तर्जातीय विवाह और दस्सा पूजनको जैनधर्मानुकूल समझते थे। वही आज अछूतोंके मन्दिर-प्रवेश तथा रोटी-बेटी व्यवहार और विधवा विवाहके प्रबल प्रसारक महात्माजीका बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे कीर्तन कर रहे हैं। जिन लोगोंने ब्रह्मचारीजीको अपने सभामञ्चसे न बोलने दिया, वही महात्माजीकी शोक-सभा मन्दिरोंमें कर रहे हैं। जिन्होंने शिष्टताके नाते उन्हें ब्रह्मचारी तक लिखना छोड़ दिया, मन्दिरोंमें जानेसे रोक दिया, वही आज महात्माजीका स्मारक बनानेकी सोच रहे हैं, विश्ववन्द्य कहकर अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट कर रहे हैं।

जब हम चलें तो साया भी अपना न साथ दे।
जब वे चलें ज़मींन चले आस्माँ चले ॥

—जलील

यदि सचमुच यह लोग महात्माजीके अनुयायी और श्रद्धालु हुए होते तो बात ही क्या थी। भूल किससे नहीं होती, बड़े-बड़े दोषी भी प्रायश्चित करने पर सङ्घमें मिला लिये जाते हैं। पर नहीं, इनके हृदय में उसी तरह हलाहल भरा हुआ है, देशकी प्रगतिमें ये बाधक रहे हैं और रहेंगे, सुधार कार्योंमें सदैव विघ्न स्वरूप बने रहेंगे। इनका रुदन केवल दिखावा मात्र है। महात्माजीके अनुयायियोंके हाथमें आज शासन-सत्ता है इसीलिये इन्होंने अपना यह बहुरूपिया वेष बनाया है। शासन-सत्ता जिसके हाथमें हो, वह चाहे भारतीय हो या अभारतीय, पटवारी हो या दरोगा उसीके तलुवे सहलानेमें लोग दक्ष होते हैं।

२ जाली संस्थाएं—

कुछ धूर्तोंका यह विश्वास है कि दुनिया मूर्खोंसे भरी पड़ी है। इसमें हियेके अन्धे और गाँठके पूरे अधिक और विवेकबुद्धि वाले बहुत कम हैं। इसी लिये वे धूर्तताके जालमें लोगोंको फँसाते रहते हैं। हमारी समाजमें भी कितनी जाली संस्थाएँ ऐसे लोगोंने कायमकी हुई हैं। कोई धर्मार्थ औषधालयके नाम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर, कोई अहिंसा प्रचारक सङ्घके नामपर, मनमानी लूट मचा रहे हैं। पत्रोंमें विज्ञापन देते हैं, उपदेशकी का जामा पहनकर गाँव-गाँवमें घूमते हैं। चन्दा इकट्ठा करते हैं और गुलछर्रे उड़ाते हैं। समाजका खून चूसने वाली ऐसी जाली संस्थाओंका सामूहिक रूपसे भण्डाफोड़ होना चाहिये। इनके संचालकोंके काले कारनामोंका सचित्र उल्लेख होना चाहिये। ताकि समाज इन धूर्तोंके चङ्गुलसे बच सके। अनेकान्त ऐसे लेखोंका स्वागत करेगा।

३ हमारा नेता—

हमारे नेता एक नहीं अनेक हैं, जितने नावमें बैठने वाले नहीं उससे अधिक खेवट मौजूद हैं। अगर यह खेवट एक मत होकर हमारी इस जीर्ण-शीर्ण नौकाको पार लगानेका प्रयत्न करते तो हमें अपने भाग्यपर गर्व होता, हम बाआवाज बुलन्द कहते कि जहाँ इतर नौकाओंको एक-दो मल्लाह नहीं मिल पा रहे हैं, वहाँ हमारी सुरक्षाको इतने नाविक मौजूद हैं। परन्तु खेद है कि स्थिति इसके विपरीत है। इतर नौकाओंके मनुष्योंमें बाक़ायदा जिन्होंने मार्गकी दुर्गम कठिनाइयोंका अनुभव प्राप्त किया है। जिन्हें मार्गमें पड़ने वाली चट्टानों, लहरों और भँवरों का ज्ञान है और जो आँधी, पानी, तूफानोंके आनेका इरादा सप्ताह पूर्व भाँप लेते हैं बक़ौल इक़बाल—

जो है पर्देमें पिन्हा[1] चश्मेबीना[2] देख लेती है।
ज़मानेकी तबीयतका तकाज़ा देख लेती है॥

उन्हीं सुदक्ष और अनुभवी मनुष्योंके हाथमें पतवार देकर अपना खेवट चुना है और जिन्हें दक्षता प्राप्त नहीं हुई है, वे चुपचाप नावमें बैठे तूफानोंसे टक्कर लेनेके अनुभव भी प्राप्त कर रहे हैं और पार भी होरहे हैं।

परन्तु अपने यहाँ बात ही जुदा है। किनारेपर लगे वृक्षोंसे जो भी तना, शाख, डाली, टहनी तोड़ सका, उसने उसीको चप्पू बनाकर नाव खेनेका अमोघ उपाय समझ लिया। जिन्हें टहनी न मिली, वह धोतियोंको ही पानीमें डालकर उससे पतवारका

१ पर्देमें छुपा हुआ, अप्रकट। २ दूरन्देश दृष्टि।

काम लेनेका दुःस्साहस कर रहे हैं। इतना भी होता तो गनीमत थी, शायद तूफानोंमें पड़कर लहरोंके सहारे वह कभी न कभी पार होजाती। परन्तु यहाँ तो आलम ही जुदा है। हर नाविक बना हुआ अपनी अक्लकी पन्तल फाड़ रहा है। एक-दूसरेके मार्गका विपरीत अनुसरण कर रहा है। नाव भँवरमें पड़कर मौतके चक्कर काट रही है और उसके सितमज़रीफ़ नाविक एक दूसरेको धकेलने और अपनी मनमानी करनेपर तुले हुए हैं। और नावमें बैठे हुए निरीह अबोध माली सर पीटकर चिल्ला रहे हैं—

खेलना जब उनको तूफानों से आता ही न था।
फिर यह किश्तीके हमारे नाखुदा[1] क्यों होगये?

कैसी दयनीय स्थिति है उस समाजकी, जिसके भूतपूर्व बल पराक्रमको याद करके मृत्यु उसके पास आनेसे झिझकती है, परन्तु उसके मार्गदर्शक बने हुए उसे स्वयं मौतके मुँहमें ले जारहे हैं। गन्तव्य स्थान तक सम्यक् मार्गप्रदर्शन कोई नहीं कर रहा है। रविशसिद्दीकीके शब्दोंमें—

ख़िज्र[2] ही ख़िज्र नज़र आते हैं हरसू[3] हमको।
कारवाँ[4] बेख़बरे राहेगुज़र[5] आज भी है॥

एक मार्ग प्रदर्शक हो तो उसकी बात समझमें आए और गिरते-पड़ते लक्षकी ओर भी बढ़ा जाए। परन्तु जहाँ न लक्षका पता है, न मार्गका पता है, वहाँ सिवा दम घुट-घुटकर मरनेके और चारा भी क्या है?

हम सच्चे मार्गप्रदर्शककी खोजमें इधर-उधर भटकते हैं, परन्तु सफलता नहीं मिलती:—

चलता हूं थोड़ी दूर हरइक तेज़रौ के साथ।
पहचानता नहीं हूं अभी राहबरको मैं[6]॥

हमारी स्थिति उक्त शेरके अनुसार होती तो भी

१ खेवट-मल्लाह। २ पथप्रदर्शक। ३ चारों ओर। ४ यात्रीदल। ५ भटकी राहमें।
६ मिर्ज़ा ग़ालिब फरमाते हैं—मैं हर तेज़रौ (शीघ्र चलने वालेके साथ) चलता हूँ पर जब मुझे मालूम होता है कि यह तो स्वयं भटक रहा है या लुटेरा है तो ठहर जाता हूं इस मेरे भटकनेका कारण यही है कि मैं अभी तक अपने असली पथप्रदर्शक (राहबर) को नहीं पहचान पाया हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गनीमत थी, भटकते-भटकते कभी तो सच्चे मार्ग-दर्शकका पता पाते। परन्तु यहाँ तो कोई नेता है ही नहीं, नेताओंके वेषमें भेड़िये, बावले, अबोध और अकर्मण्य हमारे चारों ओर घूम रहे हैं। और अपनी जुदा-जुदा डफली बजा रहे हैं, उस डफलीकी तानपर मस्त होकर कौन कुएमें गिरेगा और कौन खाईमें इसकी इन्हें न चिन्ता है और न सोचनेका समय है।

जैन समाजके तीनों सम्प्रदायोंमें अखिलभारतीय संस्था तीन भी होतीं तो भी ठीक थीं। परन्तु २ दर्जनसे तो अब भी कम नहीं और कई संस्थाओंके बीजारोपण होरहे हैं। और तारीफ यह है कि इनके अधिकारियोंको अपने निजी कार्योंसे लहमेभरकी फुरसत नहीं। कार्यालय मामूली क्लर्क चलाते हैं और इनकी ओरसे बहुत साधारण टकेपन्थी एक-एक दो-दो उपदेशक गाँव-गाँवमें घूमते हैं। वे कहाँ जाते हैं और क्या-क्या अनाप-शनाप कह आते और उसका क्या फल होता है, यह जानने तकका अवकाश किसीके पास नहीं है। इन अखिल भारतीय सभाओं के अधिवेशन होते हैं। वह अधिवेशन क्यों होरहा है और क्या उपयोगी योजनाएँ समाजके लिये रखनी हैं, इसपर कार्यकारिणी कभी विचार तक नहीं करती। विचार करनेको समय ही नहीं, बमुश्किल बड़े दिन या ईस्टरकी छुट्टियोंमें केवल अधिवेशनमें सम्मिलित होनेको समय निकल पाता है। परिणाम यह होता है कि विषय निर्वाचनीमें बैठे हुए महानुभाव वहींकी वहीं परस्पर विरोधी उलूल-जुलूल प्रस्ताव गढ़ते रहते हैं, घण्टों बहस होती रहती है और अन्तमें कुछका कुछ पास होजाता है। न कोई यह सोचता है कि इस प्रस्तावका क्या प्रतिफल होगा, न कोई उसे असली रूप देनेकी योजनापर ही विचार करता है।

जिनके पास संस्थाएँ हैं, वे कुछ कर नहीं पारहे हैं, जिनके पास नहीं हैं वे किसी न किसी बहाने अपनी नई संस्था खोलने जारहे हैं। पानकी दुकान खोलनेमें शायद असुविधा हो, परन्तु संस्था खोलनेमें कोई परेशानी नहीं। समाजसे चन्दा मिल ही जाता है, बस अपने दो-चार आदमियोंको आजीविका भी मिल गई और स्वयं नेता भी बन गये।

नेता बनना बुरा नहीं यदि त्याग और तपस्याके साथ-साथ कुछ कर गुज़रनेकी चाह हो। परन्तु केवल आजीविकाके लिये, अपनी महत्वाकांक्षाएँ पूर्ण करनेके लिये और अपनेको अर्थ-चिन्तासे निराकुल करनेके लिये नेता बननेका प्रयत्न दुखिया समाजको पीठमें छुरा भोंकना है।

४ अल्पसंख्यकोंके सुधार—

सन् १९२८ की दशलाक्षणीके दिन थे। मैं और स्वर्गीय रायबहादुर साहु जुगमन्दरदासजी नजीबाबादमें धार्मिक और सामाजिक चर्चाएँ कर रहे थे। सुधारोंको लेकर जैनसमाजकी तू-तू, मैं-मैं का भी प्रसङ्ग छिड़ गया। रायबहादुर साहब एक ही सुलझे हुए आदमी थे, वे सहसा गम्भीर हो उठे और बोले:—"गोयलीयजी, समाजकी शक्ति इन व्यर्थके कार्योंमें नष्ट होती देखकर मुझे बड़ा दुख होता है। इन छोटे-छोटे सुधारोंको लेकर हमारी समाजमें व्यर्थकी उथल-पथल मची हुई है।"

सुधारोंके विपक्षमें रायजनी करते सुनकर मैं कुछ कहना ही चाहता था कि वे बोले—"घबराओ नहीं, मैं सुधारोंका विरोधी नहीं आपसे अधिक पक्षपाती हूं, परन्तु मैं समाजमें उन्हीं आन्दोलनोंका समर्थक हूं जो जैनसमाजसे सम्बन्ध रखते हैं और जैनेतर बहुसंख्यकों पर आश्रित नहीं हैं। मैं कब कहता हूँ कि शास्त्रोद्धारका आन्दोलन बन्द कर दिया जाय, यह आन्दोलन तो इतने वेगसे चलाया जाय कि एक भी शास्त्र अमुद्रित न रहने पाए, दस्सा-पूजनाधिकार, अन्तर्जातीयविवाहका आन्दोलन आप खूब कीजिये। बाल और वृद्ध विवाह रोकिये, वर-विक्रय, वेश्यानृत्य, नुक्ता प्रथाको अविलम्ब बन्द कराइये। यह सब आन्दोलन केवल अपनी समाजसे सम्बन्ध रखते हैं अतः इन्हें सहर्ष चलाइये और सफलता प्राप्त कीजिये।"

"मेरा आशय तो यह है कि वे आन्दोलन जो हमारे इतर भिन्न धर्मियों, पड़ौसियों और सजातियों-से सम्बन्ध रखते हैं उन्हें न छेड़ा जाय। क्योंकि यदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उन कार्योंको वे पसन्द न करेंगे तो हमें कभी सफलता नहीं मिल सकती, उल्टा हमारी स्थिति बड़ी दयनीय होजायगी। उदाहरणके लिये आप लीजिये—दस्साओंको हम मन्दिरोंमें पूजा-प्रक्षालका तो अधिकार सहर्ष दे सकते हैं; क्योंकि मन्दिर अपने निजी हैं, उनपर जैनेतर बन्धुओंका कोई अधिकार नहीं। हमारे इस कार्यसे उनका बनता बिगड़ता भी नहीं है। किन्तु यदि हम उनसे शादी व्यवहार करने लगें तो हमारे सजातीय किन्तु भिन्न भाइयोंके कान अवश्य खड़े होजाएँगे। यदि वह स्वयं इसे नहीं अपनाएँगे तो हमें ऐसा करते देख हमारे साथ विवाह तथा सामाजिक-सम्बन्ध विच्छेद कर देंगे। और कोई भी इतने बड़े समुदायसे वहिष्कृत होकर—पानीमें मगरसे असहयोग रखकर—जीवित नहीं रह सकता। अछूतोद्धार आदि आन्दोलन भी इसी तरहके हैं। आप लाख प्रयत्न इनके उद्धारका कीजिये, यदि बहुसंख्यक समाज इन्हें नहीं अपनाता तो आप भी उनकी दृष्टिमें अछूत बनकर रह जाएँगे। और जिस रोज़ हमारे बहुसंख्यक सजातीय भाई और इतर समाज इनको लेना चाहेंगे, तब आपको भी अनुकरण करना पड़ेगा। जिन कार्योंमें बहुसंख्यक समुदायका हित-अहित सन्निहित है; वे उन्हींके करनेके लिये छोड़ देने चाहियें, उपर्युक्त कार्योंमें उनको सहयोग देना चाहिये, परन्तु ऐसे कार्योंको लेकर अपनी समाजमें वितण्डावाद नहीं बढ़ाना चाहिये।"

रायबहादुर साहबकी उक्त भविष्यवाणी आज साक्षात् हो उठी है। जो पण्डे, पुजारी मन्दिरोंमें अछूतोंको नहीं जाने देते थे, कुत्ते-बिल्लीसे भी अधिक घृणा उनसे करते थे; जिनकी मूर्खतासे १०-१२ करोड़ विधर्मी बन चुके थे। आज वही बहुसंख्यक जनता द्वारा चुने गये शासनाधिकारियों द्वारा बनाये गये अछूत मन्दिर-प्रवेश और समान सिद्धान्तके सामने सर टेकते नज़र आरहे हैं।

अब क़ानूनन हरिजनोंसे धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रोंमें समान व्यवहार होगा, वे मन्दिरोंमें बेरोक-टोक जा सकेंगे। उनसे जो रोटी-बेटी व्यवहार करेंगे उनसे घृणा करने वाले दण्डनीय होंगे। वे भोजन गृह खोल सकेंगे। तब बताइये पृथ्वीपर अब उनसे दामन बचाकर चलना कैसे सम्भव हो सकेगा?

जैन जो बहु-संख्यक समाजके विरोधके भयसे पतितोद्धार कार्य करते हुए हिचकते थे। अब उपयुक्त अवसर आया है कि वे उन्हें जिनधर्ममें दीक्षित करके जैनसङ्घकी संख्या बढ़ाएँ।

डालमियाँनगर (बिहार)
८ मार्च १९४८ —गोयलीय

निरीक्षण और सम्मति

हालमें जैनसमाजके ख्यातिप्राप्त और स्याद्वादमहाविद्यालय काशीके प्रधानाध्यापक पं० कैलाशचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री वीरसेवामन्दिरमें पधारे थे। आपने यहाँके कार्योंका निरीक्षण कर जो वीरसेवामन्दिरपर अपने उद्गार प्रकट किये हैं और निरीक्षणबुकमें सम्मति लिखी है। उसे यहाँ दिया जा रहा है:—

आज मुझे वर्षोंके बाद वीरसेवामन्दिरको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। माननीय मुख्तारसा० ७१ वर्षकी उम्रमें भी जवानोंकी सी लगन लिए हुए कार्यमें जुटे हैं। उनके दोनों सहयोगी विद्वान् न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी कोठिया व पं० परमानन्दजी भी अपने-अपने कार्यमें संलग्न हैं। इस मन्दिरसे दिगम्बर जैन-साहित्य और इतिहासकी जो ठोस सेवा होरही है वह चिरस्मरणीय है। मेरी यही भावना है कि मुख्तारसा० सुदीर्घ काल तक जीवित रह कर हमारे साहित्यकी सेवा करते रहें।

कैलाशचन्द्र शास्त्री
१०—२—४८ स्याद्वाद दि० जैन महाविद्यालय, काशी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य-परिचय और समालोचन

१ राजुल [काव्य]

लेखक, श्रीबालचन्द्र जैन विशारद काशी। प्राप्ति-स्थान, साहित्यसाधनासमिति जैनविद्यालय भदैनी काशी। मूल्य १।।)।

यह पद्यकाव्यग्रन्थ हालमें प्रकट हुआ है। यह लेखककी अपनी दूसरी रचना है। इसके पहले वे 'आत्मसमर्पण' पाठकोंको भेंट कर चुके हैं, जिसका परिचय पिछली किरणमें प्रकट होचुका है। इसमें कविने राजुल और नेमिकुमारका पौराणिक ऐतिहासिक चरित्र आधुनिक रोचक ढङ्गसे चित्रित किया है। इसमें दर्शन, स्मरण, विराग, विरह और उत्सर्ग ये पाँच अध्याय हैं। प्रथम अध्याय कविने कल्पनाके आधारपर रचा है और शेष चार अध्याय पुराणवर्णित कथानुसार निर्मित किये हैं। कविसे यह काव्य उत्कृष्ट कोटिका बन पड़ा है। काव्यमें जैसी कुछ कोमलता, सरलता, शिक्षा, नीति, सुधार कवित्वकला आदि गुण अपेक्षित हैं वे प्रायः सब इस 'राजुल'में विद्यमान हैं। इसके कुछ नमूने देखिये—

'स्मरण' अध्यायमें कवि राजुल-मुखसे कहलाता है—

जीवन सूनासा लगता था यदि नेमि न आए जीवनमें,
जीनेका क्या उपयोग! अरे उत्साह न आए जीवनमें।

यहाँ नीतिकी कितनी सुन्दर पुट है।

'विरह' अध्यायमें राजुल विरहीकी अवस्थाको प्राप्त करती हुई भी अपने नारीत्वके अभिमानको नहीं भूलती। कवि राजुलके मुखसे वहाँ कहलाता है—

बन बनमें मैं सँग सँग फिरती गिरिमें भी मैं सँग सँग तपती,
बना संगिनी जीवनकी फिर भी मुझको कायर माना।
तुमने कब मुझको पहिचाना।

नारी ऐसी क्या हीन हुई!
तनकी कोमलता ही लेकर नरके सम्मुख वह दीन हुई!
जो पुरुष करे कर हम न सकें! जीवन-पथमें क्या बढ़ न सकें!
समझे जग हमको क्यों कायर, ऐसी भी क्या हम क्षीण हुई।
नारी ऐसी क्या हीन हुई!

'उत्सर्ग' अध्यायमें राजुल जब गिरनार पर्वतपर नेमिकुमारके पास जाकर अपने आपको उनके चरणोंमें समर्पण कर देती हैं तब कविने नेमिकुमारके द्वारा उनके समर्पणको स्वीकार करते हुए उनके मुखसे कितना सैद्धान्तिक उत्तर दिलाया है—

"आओ हम दोनों ही जगके दुखके कारणकी खोज करें,
बन्धन जगके हम काटेंगे बस यही भावना रोज करें।
रत्नत्रय अपना परम साध्य तप औ' संयमको अपनाएँ,
निश्चय ही बन्धन-मुक्त बनें स्वातन्त्र्य-गीत फिर हम गाएँ॥"

कहनेका तात्पर्य यह कि यह काव्य कई दृष्टियोंसे अच्छा बना है। विदुषीरत्न पं० ब्र० चन्दाबाईजीकी महत्वकी विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाने तो स्वर्ण कलशका काम किया है। इस उदीयमान कविसे समाजको बहुत कुछ आशा है। हम उनकी इस रचनाका स्वागत करते हैं।

२ मुक्तिमन्दिर [पद्यमय रचना]

लेखक, पण्डित लालबहादुर शास्त्री। प्राप्तिस्थान नलिनी सरस्वती मन्दिर, भदैनी बनारस। मूल्य।)।

यह क्षमा, निरभिमानता, सरलता, सत्य, निर्लोभता, सयम, तप, त्याग, अपरिग्रहता और ब्रह्मचर्य इन दश मानव-धर्मोंका, प्रत्येकका पाँच-पाँच सुन्दर एवं सरल पद्योंमें, कथनकरने वाली नवीन शैलीकी एक उत्तम रचना है। यह सामान्य जनतामें काफी संख्यामें प्रचार-योग्य है और लोकरुचिके अनुकूल है। ऐसी सरल रचना करनेके लिये लेखक समाजके धन्यवादपात्र हैं।

—दरबारीलाल जैन, कोठिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय ज्ञानपीठ काशीके प्रकाशन

१. **महाबन्ध**—(महधवल सिद्धान्त-शास्त्र) प्रथम भाग। हिन्दी टीका सहित मूल्य १२)।

२. **करलक्खण**—(सामुद्रिक-शास्त्र) हिन्दी अनुवाद सहित। हस्तरेखा विज्ञानका नवीन ग्रन्थ। सम्पादक—प्रो० प्रफुल्लचन्द्र मोदी एम० ए०, अमरावती। मूल्य १)।

३. **मदनपराजय**— कवि नागदेव विरचित (मूल संस्कृत) भाषानुवाद तथा विस्तृत प्रस्तावना सहित। जिनदेवके कामके पराजयका सरस रूपक। सम्पादक और अनुवादक-पं० राजकुमारजी सा०। मू० ८)

४. **जैनशासन**—जैनधर्मका परिचय तथा विवेचन करने वाली सुन्दर रचना। हिन्दू विश्वविद्यालयके जैन रिलीजनके एफ० ए० के पाठ्यक्रममें निर्धारित। मुखपृष्ठपर महावीरस्वामीका तिरङ्गा चित्र। मूल्य ४।-)

५. **हिन्दी जैन-साहित्यका संक्षिप्त इतिहास**—हिन्दी जैन-साहित्यका इतिहास तथा परिचय। मूल्य २॥)।

६. **आधुनिक जैन-कवि**—वर्तमान कवियोंका कलात्मक परिचय और सुन्दर रचनाएँ। मूल्य ३॥)।

७. **मुक्ति-दूत**—अञ्जना-पवनञ्जयका पुण्यचरित्र (पौराणिक रोमाँस) मू० ४॥)

८. **दो हज़ार वर्षकी पुरानी कहानियां**—(६४ जैन कहानियाँ) व्याख्यान तथा प्रवचनोंमें उदाहरण योग्य। मूल्य ३)।

९. **पथचिह्न**—(हिन्दी-साहित्यकी अनुपम पुस्तक) स्मृति रेखाएँ और निबन्ध। मूल्य २)।

१०. **पाश्चात्य तर्कशास्त्र**—(पहला भाग) एफ० ए० के लॉजिकके पाठ्यक्रमकी पुस्तक। लेखक—भिक्षु जगदीशजी काश्यप, एम० ए०, पालि-अध्यापक, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी। पृष्ठ ३८४। मूल्य ४॥)।

११. **कुन्दकुन्दाचार्यके तीन रत्न**—मूल्य २)।

१२. **कन्नडप्रान्तीय ताडपत्र ग्रन्थ-सूची**—(हिन्दी) मूडबिद्रीके जैनमठ, जैन-भवन, सिद्धान्तवसदि तथा अन्य ग्रन्थ भण्डार कारकल और अलिपूरके अलभ्य ताडपत्रीय ग्रन्थोंके सविवरण परिचय। प्रत्येक मन्दिरमें तथा शास्त्र-भण्डारमें विराजमान करने योग्य। मूल्य १०)।

वीरसेवामन्दिरके सब प्रकाशन भी यहांपर मिलते हैं

प्रचारार्थ पुस्तक मँगाने वालोंको विशेष सुविधाएँ

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Regd. No. A-731

वीरसेवामन्दिरके नये प्रकाशन

१ **अनित्यभावना**—मुख्तार श्रीजुगलकिशोरजी के हिन्दी पद्यानुवाद और भावार्थ-सहित। इष्टवियोगादिके कारण कैसा ही शोकसन्तप्त हृदय क्यों न हो, इसको एक बार पढ़ लेनेसे बड़ी ही शान्तताको प्राप्त हो जाता है। इसके पाठसे उदासीनता तथा खेद दूर होकर चित्तमें प्रसन्नता और सरसता आजाती है। सर्वत्र प्रचारके योग्य है। मूल्य ।)

२ **आचार्य प्रभाचन्द्रका तत्त्वार्थसूत्र**—नया प्राप्त संक्षिप्त सूत्रग्रन्थ, मुख्तार श्रीजुगलकिशोरजीकी सानुवाद व्याख्या-सहित। मूल्य ।)

३ **सत्साधु-स्मरण-मङ्गलपाठ**—मुख्तार श्री-जुगलकिशोरजीकी अनेक प्राचीन पद्योंको लेकर नई योजना, सुन्दर हृदयग्राही अनुवादादि-सहित। इसमें श्रीवीर-वर्द्धमान और उनके बादके, जिनसेनाचार्य पर्यन्त, २१ महान् आचार्योंके अनेकों आचार्यों तथा विद्वानों द्वारा किये गये महत्वके १३६ पुण्य स्मरणोंका संग्रह है और शुरूमें १ लोकमंगल-कामना, २ नित्यकी आत्म-प्रार्थना, ३ साधुवेषनिदर्शन-जिनस्तुति, ४ परमसाधुमुखमुद्रा और ५ सत्साधुवन्दन नामके पाँच प्रकरण हैं। पुस्तक पढ़ते समय बड़े ही सुन्दर पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं और साथ ही आचार्योंका कितना ही इतिहास सामने आजाता है। नित्य पाठ करने योग्य है। मू० ॥)

४ **अध्यात्म-कमल-मार्तण्ड**—यह पञ्चाध्यायी तथा लाटी संहिता आदि ग्रन्थोंके कर्ता कविवर राजमल्ल-की अपूर्व रचना है। इसमें अध्यात्मसमुद्रको कूजेमें बन्द किया गया है। साथमें न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी कोठिया और पण्डित परमानन्दजी शास्त्रीका सुन्दर अनुवाद, विस्तृत विषयसूची तथा मुख्तार श्रीजुगलकिशोर जीकी लगभग ८० पेजकी महत्वपूर्ण प्रस्तावना है। बड़ा ही उपयोगी ग्रन्थ है। मू० १॥)

५ **उमास्वामि-श्रावकाचार-परीक्षा**—मुख्तार श्रीजुगलकिशोरजीकी ग्रन्थपरीक्षाओंका प्रथम अंश, ग्रन्थ-परीक्षाओंके इतिहासको लिये हुए १४ पेजकी नई प्रस्तावना-सहित। मू० ।)

६ **न्याय-दीपिका (महत्वका नया संस्करण)** न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी कोठिया द्वारा सम्पादित और अनुवादित न्यायदीपिकाका यह विशिष्ट संस्करण अपनी खास विशेषता रखता है। अबतक प्रकाशित संस्करणोंमें जो अशुद्धियाँ चली आरही थीं उनके प्राचीन प्रतियोंपरसे संशोधनको लिये हुए यह संस्करण मूलग्रन्थ और उसके हिन्दी अनुवादके साथ प्राक्कथन, सम्पादकीय, १०१ पृष्ठकी विस्तृत प्रस्तावना, विषयसूची, और कोई ८ परिशिष्टोंसे संकलित है, साथमें सम्पादक-द्वारा नवनिर्मित 'प्रकाशाख्य' नामका एक संस्कृत टिप्पण भी लगा हुआ है, जो ग्रंथगत कठिन शब्दों तथा विषयोंका खुलासा करता हुआ विद्यार्थियों तथा कितने ही विद्वानोंके कामकी चीज है। लगभग ४०० पृष्ठोंके इस सजिल्द वृहत्संस्करणका लागत मूल्य ५) रु० है। कागजकी कमीके कारण थोड़ी ही प्रतियाँ छपी हैं और थोड़ी ही अवशिष्ट रह गई हैं। अतः इच्छुकोंको शीघ्र ही मँगा लेना चाहिये।

७ **विवाह-समुद्देश्य**—लेखक पं० जुगलकिशोर मुख्तार, हालमें प्रकाशित चतुर्थ संस्करण।

यह पुस्तक हिन्दी-साहित्यमें अपने ढंगकी एक ही चीज है। इसमें विवाह-जैसे महत्वपूर्ण विषयका बड़ा ही मार्मिक और तात्त्विक विवेचन किया गया है, अनेक विरोधी विधि-विधानों एवं विचार-प्रवृत्तियोंसे उत्पन्न हुई विवाहकी कठिन और जटिल समस्योंको बड़ी युक्तिके साथ दृष्टिके स्पष्टीकरण-द्वारा सुलझाया गया है और इस तरह उनमें दृष्टिविरोधका परिहार किया गया है। विवाह क्यों किया जाता है? धर्मसे, समाजसे और गृहस्थाश्रम-से उसका क्या सम्बन्ध है? वह कब किया जाना चाहिये? उसके लिए वर्ण और जातिका क्या नियम होसकता है? विवाह न करनेसे क्या कुछ हानि-लाभ होता है? इत्यादि बातोंका इस पुस्तकमें बड़ा ही युक्ति-पुरस्सर एवं हृदयग्राही वर्णन है। बढ़िया आर्ट पेपरपर छपी है। विवाहोंके अवसरपर वितरण करने योग्य है। मू० ॥)

प्रकाशन विभाग—
वीरसेवामन्दिर, सरसावा (सहारनपुर)

प्रकाशक पं० परमानन्द जैन शास्त्री भारतीय ज्ञानपीठ काशीके लिये आशाराम खत्री द्वारा रॉयल प्रेस सहारनपुरमें मुद्रित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org